॥ श्रीः ॥

विद्याभवन आयुर्वेद ग्रन्थमाला
४७

भिषग्वर श्रीज्ञानचन्द्रशर्मविरचिता

रसकौमुदी

'विद्योतिनी' हिन्दीव्याख्योपेता

Jnanacanda Sarma

व्याख्याकारः
श्रीपावनीप्रसाद शर्मा

सम्पादकः
भिषग्रत्न श्रीब्रह्मशङ्करमिश्रः

चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

१९६६

प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० संवत् २०२३
मूल्य : १-५०

Phone : 3076

प्रधान कार्यालयः—
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
गोपाल मन्दिर लेन,
पो० आ० चौखम्बा, पोस्ट बाक्स नं० ८, वाराणसी-१

THE
VIDYABHAWAN AYURVEDA GRANTHAMALA
47
****

THE
RASAKAUMUDĪ
OF
BHIṢAGVARA JÑĀNACHANDRA ŚARMĀ

With
The 'Vidyotinī' Hindī Commentary
By
S'RĪ PĀVANĪ PRASĀD SHARMĀ

Edited by
Shri Brahmashankar Mishra

THE
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
VARANASI-1
1966

First Edition
1966
Price : 1-50

Also can be had of
THE CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
Publishers & Antiquarian Book-Sellers
P. O. Chowkhamba, Post Box 8, Varanasi-1 (India)
Phone : 3145

प्राक्कथन

रस-चिकित्सकों को सुविदित है कि रस-चिकित्सा-संबन्धी ग्रन्थ-रत्न थोड़े ही उपलब्ध हैं। उपलब्ध ग्रन्थों में भिषग्वर ज्ञानचन्द्र शर्मा विरचित 'रस-कौमुदी' भी अपनी उपयोगितावश महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है जिसके संस्कृत-टिप्पणी आदि से संवलित एक-दो संस्करण ही दृष्टिपथ में आए हैं।

इस प्राचीन दुर्लभ ग्रन्थ में संक्षिप्त रूप से पारद-सम्बन्धी सभी चिकित्सोपयोगी योगों पर उत्तम प्रकाश डाला गया है।

यद्यपि अधिकारी विद्वानों द्वारा इसके परिशोधनादि संस्कार उत्तम रीति से हो चुके हैं तथापि इदानींतया हिन्दी अनुवाद हो जाने पर ही यह बहुजन हिताय सिद्ध हो सकेगा, इस दृष्टि से इस कोटि के प्रकाशनों के एकमात्र व्रती प्रकाशक महोदय ने श्री पावनीप्रसाद शर्मा से 'विद्योतिनी' हिन्दी व्याख्या निर्मित कराई और इसके सम्पादन-संशोधनादि का भार मुझ पर छोड़ दिया।

मेरे इस दुःसाहस के परिणाम का निर्णय तो पाठक करेंगे ही, मैंने तो विद्वानों का अनुगमन करते हुए विशेष ध्यान इस बात का रखा है कि मूल से संग-विच्युति कहीं न होने पावे।

मेरे कार्य से पाठकों का तनिक भी हित हुआ तो गुरुजनों का आशीर्वाद समझूंगा।

संबद्ध त्रुटियों के लिये क्षमाप्रार्थी हूँ।

वशंवदः
ब्रह्मशंकरमिश्रः

विषय-सूची

	पृ०		पृ०
सूतोत्पत्तिः	१	रसस्य कुबुरभस्म	२८
सूतस्य नव दोषाः	६	रसभस्मानां गुणाः	२५
नव संस्काराः	७	सिद्धपूजाविधिः	"
मर्दनम्	९	इष्टार्थसिद्धिगुटिकाप्रकारः	२७
नवदोषापनुत्तये शुद्धिप्रकाराः	"	रसस्य दीपनप्रकारः	२९
उत्थापनम्	१०	रसस्य ग्रासप्रदानप्रकारः	३०
अधःप्रातनम्	११	रसमुखबन्धप्रकारः	३१
दीपनम्	"	पारदमुखबन्धनमन्त्राः	३२
जारणम्	१२	वेधामुखरसः	३३
ग्रासप्रदानम्	१३	धूमवेधी रसः	३४
रञ्जनम्	"	जगन्मोहनरसाः	३५
क्रमणम्	१४	षण्मुखरसः	४०
सर्वलोहशुद्धिः	१५	सार्वभौमरसः	४१
सर्वपाषाणशुद्धिः	"	नवग्रहरसः	४२
गन्धकशुद्धिः	१६	लोकोत्तररसः	४४
अभ्रकशुद्धिः	"	ग्रहणीवेलारसः	४५
सर्वपाषाणसत्त्वपातनम्	१७	विश्वम्भररसः	४८
पाषाणवज्रलोहाभ्रकद्रुतिप्रकारः	१८	पञ्चबाणरसः	४९
त्रिलोहमारणम्	१९	ब्रह्मास्त्ररसः	५२
सर्वलोहमारणम्	२०	महाकालानलरसः	५८
अभ्रकमारणम्	२१	आग्नेयरसः	५४
वज्रमारणम्	२२	संशोषणरसः	५६
रसेश्वरकृष्णभस्म	२४	रसमात्रा गुटिका	५७
रसस्य पीतभस्म	"	त्रैलोक्यचिन्तामणिरसः	६०
रसस्य श्यामभस्म	"		

रस-कौमुदी

'विद्योतिनी' हिन्दीव्याख्योपेतम्

प्रथमोऽधिकारः

श्रीचन्द्रशेखरमुनीश्वरवंशजातः
सर्वज्ञचन्द्र इति विप्रकुलोत्तमोऽस्ति ।
श्रीमन्त्रशब्दशिवलब्धवरप्रसादा
च्छ्रीमद्यतीन्द्रविबुधेन्द्रवरात् स तस्मात् ॥१॥

लोके सर्वभिषङ्मनोहरभिषक् शास्त्रान्धकारापहा–
गुर्वीगर्वमदान्धसर्वगदचोरस्तोमरात्कान्तरा ।
सर्पद्विरवकरूपदग्विषजराजारभ्रमघ्नः क्रमाद्
दारिद्र्याम्बुधितारणी रसकौमुदी ह्यद्यं दीप्यते[1] ॥

श्री चन्द्रशेखर मुनि के वंश में उत्पन्न हुआ सर्वज्ञचन्द्र नामका है जिसमें उत्पन्न उत्तम कुल विप्रके ज्ञानचन्द्र ने लक्ष्मी और शिवजी के मंत्र के जप की कृपा से पंडितों में तथा यतियों में श्रेष्ठों के वरदान से

---

१. श्लोकस्यास्य रचना सर्वथाह्यसम्बद्धा दोषबहुला चेति विज्ञायते अतः पादद्वयस्य टीकां कर्तुमसमर्थोऽस्मि ।

इस ग्रन्थ को रचा है। संसार में जो श्रेष्ठ वैद्य हैं वे शास्त्र के विषय में फैले हुए अन्धकार को नष्ट करने वाले हैं और यह रसकौमुदी नामक ग्रन्थ मनुष्य की दरिद्रता के समुद्र से तारने वाली है तथा बिना क्षय के प्रकाश को प्राप्त होती है ॥ १-२ ॥

सर्वाणि रसशास्त्राणि विमृश्य रसकौमुदी।
ज्ञानचन्द्रेण रचिता संक्षेपेण महात्मना ॥ ३ ॥

कवेर्नाम ज्ञानचन्द्रस्तच्छास्त्रं रसकौमुदी।
अन्यै रसभिषक्शास्त्र कारैः किं प्रयोजनम् ॥ ४ ॥

रसकौमुदीशास्त्रं लोकहितार्थं विरच्य वक्ष्यामः।
तद्देहलोहसिद्ध्यै शरीरिणां सकलसिद्धशास्त्रोक्तम् ॥ ५ ॥

सम्पूर्ण रसग्रन्थों का मनन तथा मथन करके ज्ञानचन्द्र नामक विद्वान् ने संक्षेप में रसकौमुदी का निर्माण किया है। ग्रन्थकर्ता का नाम ज्ञानचन्द्र है तथा उसके शास्त्र का नाम रसकौमुदी है। जब इसमें रसशास्त्र का सार भाग आ गया है तब अन्य ग्रन्थों से क्या लाभ ? रसकौमुदी नामक ग्रन्थ को लोक के हित के लिये कहते हैं इसमें मनुष्यों की देह तथा लोह की सिद्धि का जो विवेचन है वह सब शास्त्रीय है ॥ ४-५ ॥

आदौ तावद्रसोत्पत्तिं सिद्धिञ्च लयकारणम्।
तत्स्वरूपं च तद्भेदान् क्रमाद्वक्ष्यामि शृण्वताम् ॥ ६ ॥

तस्मिन्काले पुरा कामः स्वसामर्थ्यात्समुद्यतः।
ब्रह्मविष्णुशिवात्मेषु प्रयोगं कुरुते क्रमात् ॥ ७ ॥

ईश्वरः सर्वलोकेशस्तेषां कामाधिकाधिकः।
मोहितानां प्रभावेण स्वदेव्यां रमते भृशम् ॥ ८ ॥

निरन्तरं महागाढरत्या वीर्योद्भवोऽभवत्।
जगदापूरितं तेन महाप्रलयकालवत् ॥ ९ ॥

सूर्येन्दुतारकादीनामुदयास्तं विना जगत्।
अधिभूतं जगत्सर्वं मातरं शिशुवद्विना ॥१०॥

तस्माल्लम्बोदराद्याश्च कुमाराः शक्तयस्तथा।
रुद्रभूवः सदा भूमिः भारसम्पीडिताभवत् ॥११॥

अघोषयंस्तथा ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रदेवताः।
महाश्चर्यं गताः सर्वे मुनयोऽमितचेतसः ॥१२॥

विरिञ्चिं प्रति गच्छन्ति तत्र चाक्रोशयन्ति ते।
साचारसर्वधर्मांश्च परित्यज्याद्भुतं गतः ॥१३॥

सोऽपि कामान्धकाराब्धिमग्नोजः सनिरोदरः।
एतत्कामान्धकार्यं न जानातीति वचोऽब्रवीत् ॥१४॥

श्रुत्वा तदीरितं वाक्यमेतत्ते मुनिपुङ्गवाः।
तच्छनैर्वासवं वाणि न्यवसत्परितो विधिः ॥१५॥

ततो विष्णुं समागत्य ततः सर्वे मुनीश्वराः।
सक्रोधास्तत्र तिष्ठन्ति यत्र चापरसं विना ॥१६॥

यन्निमित्तमिदं कार्यं जगत्क्षोभमुदीरितम्।
ज्ञानाद् दृष्ट्वा तु तं ज्ञात्वा तं रुद्रं त्वरितास्तथा ॥१७॥

स्वशरीरार्धनारीति अशरीरी भवत्विति।
स्वशरीरार्धहारित्वात् पार्वत्याः पार्वतीप्रियः ॥१८॥

तथैव बुद्धौ ज्ञानेन निर्गत्याथ सविस्मयः।
जगदापूरितं वीर्यं पाताले तत्र तत्र च ॥१९॥

स्थापयत्यदितिः सर्वे मुनयः सर्वदेवताः ।
ब्रह्मानन्दगताः सर्वे ह्यभवत् पूर्ववज्जगत्[1] ॥२०॥

प्रारम्भ में रस की उत्पत्ति उसकी सिद्धि तथा लय का कारण उसका स्वरूप तथा भेद बतलावेंगे उन्हें सुनो। प्राचीन काल में काम अपने सामर्थ्य से स्वयं उत्पन्न हुआ और उसने ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव में ही अपना प्रयोग कर डाला। शिव जो कि सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं उनमें काम सबसे अधिक उत्पन्न हुआ और काम की अधिकता के कारण उन्होंने पार्वती से खूब रमण किया। निरन्तर मैथुन करने से शिवजी का जो वीर्य उत्पन्न हुआ उससे सारा संसार महाप्रलय के समान व्याप्त हो गया, सूर्य, चन्द्रमा, तारागण अस्त हो गये और सारे संसार में अँधेरा हो गया। सारा संसार ऐसा हो गया जैसे कि बिना माता के बालक हो जाता है। पश्चात् लम्बोदर आदि कुमार तथा शक्ति उत्पन्न हुई, पृथ्वी अत्यन्त भार से पीड़ित हो गई। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर आदि बड़े आश्चर्य में पड़ गये, मुनियों के आश्चर्य का भी ठिकाना न रहा पश्चात् सब लोग ब्रह्मा के पास गये और वहाँ जाकर यह किस्सा चिल्लाने लगे सबों ने आचार और धर्मों को छोड़ दिया सब आश्चर्य में पड़ गये स्वयं ब्रह्मा कामान्ध हो गये उन्होंने कहा कि इस कामान्धता के कारण को वे नहीं जानते। इस प्रकार उनके ये वाक्य सुनकर मुनिगण इन्द्र के पास गये और उनसे यह सब वर्णन किया पश्चात् विष्णु के पास गये सब मुनीश्वरों ने विष्णु के पास आकर क्रोध सहित बैठ गये। तब विष्णु ने जिसके निमित्त यह जगत् को क्षोभ करने वाला कार्य किया गया है उसे ज्ञान से जानकर अर्थात् उसे शिवजी का समझ कर कहा कि शिव का अर्ध शरीर अशरीर हो जावे। अपने शरीर के हार जाने से पार्वतीप्रिय शिवजी महाराज ने ज्ञान से

---

१. प्रकरणेऽस्मिन् बह्वयः अशुद्धयः सन्ति।

बुद्धि में निकल कर आश्चर्य के साथ वीर्य से सकल संसार को व्याप्त कर दिया फिर अदिति ने सब वीर्य को स्थापित कर दिया तब सब मुनीन्द्र तथा देवता गण आनन्द में मग्न हो गये और संसार पहिले जैसे हो गया॥ ६–२०॥

वक्तव्य—यह पारद की उत्पत्ति का कथानक अन्य ग्रन्थों से बिल्कुल भिन्न है रसरत्नसमुच्चय आदि ग्रन्थों में पारद की उत्पत्ति का सम्बन्ध शिव जी तक रक्खा गया है। इसके साथ ही श्लोकों में जगह-जगह अशुद्धियाँ तथा छन्दोभङ्ग भी हैं।

इति प्रथमोऽधिकारः।

अथ द्वितीयोऽधिकारः

त्रिमूर्त्यात्मकरूपोऽयं[1] सर्वदोषविवर्जितः ।
रसः सोऽमृततुल्याख्यः सर्वरोगहरोऽभवत् ॥ १ ॥
दोषाविहीनकः सूतः सर्वरोगकरोऽभवत् ।
सोऽपि वैद्यैर्विदग्धोऽपि दोषहान्यास्यदोऽभवत् ॥ २ ॥

सब दोषों से रहित त्रिमूर्त (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) इनके स्वरूप वाला यह पारद अमृत के समान गुणों से युक्त है तथा सब रोगों को हरने वाला है। दोषयुक्त पारद सब रोगों को पैदा करने वाला है। वह पारद दग्ध (भस्म) करने पर अनेकों दोषों तथा हानियों को पैदा करने वाला है ॥ १-२ ॥

सूतस्य नवदोषाः—

उड्डीनत्वं च कौटिल्यमनावर्तश्च सङ्करम् ।
षण्डत्वं वह्निकारित्वं समलत्वं गुरुत्वकम् ॥ ३ ॥
सविषञ्चेति सूतस्य नव[2] दोषाः प्रकीर्तिताः ।

उड्डीन एवं कौटिल्य, अनावर्त, सङ्कर, षण्डत्व, अग्निकारित्व, मलयुक्तत्व, गुरुता, विषदोष, ये पारद के नौ दोष हैं ॥ ३ ॥

नवदोषाणां तत्तद्रोगकारिता-प्रदर्शनम्—

उड्डीनदोषे शूलः स्यात् कौटिल्ये स्यात्कपालरुक् ॥ ४ ॥

1. त्रिमूर्त्यात्मकरूपः = ब्रह्मविष्णुरुद्रस्वरूपः ।
2. ग्रन्थान्तरे तु—
नागो वङ्गो मलो वह्निश्चांचल्यं च विषं गिरिः ।
असह्याग्निर्महादोषा निसर्गात्पारदे स्थिताः ॥
अन्यच्च—पर्पटी पाटली भेदी द्रावी मलकरी तथा ।
अन्धकारी तथा ध्वांक्षी विज्ञेयाः सप्त कंचुकाः ॥

अनावर्ते भ्रमोद्वेगः सङ्करे दोषसञ्चयः ।
षण्डत्वे स्यादसन्तानो वह्निदाहादिकुष्ठकृत् ॥ ५ ॥
मलत्वे वान्तिमूर्च्छादि-महोदरगतान्गदान् ।
गुरुत्वे जाड्यमूर्च्छे च विषे गात्रक्षयो भवेत् ॥ ६ ॥
यथा[1] लोहे तथा देहे गुणावगुणसङ्करः ।
ततः सूतस्य शुद्ध्यर्थं नवकर्म समीर्यते ॥ ७ ॥

पारद के अन्तर्गत जो उड्डीन दोष है वह शूल को उत्पन्न करता है। कौटिल्य दोष कपाल में पीड़ा उत्पन्न करता है। अनावर्त दोष से भ्रम तथा उद्वेग उत्पन्न होता है, सङ्कर दोष से देह में दोषों का संचय होता है। षण्ड दोष से सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति नष्ट होती है, वह्नि दोष से दाह तथा कुष्ठ आदि विकार होते हैं। मल दोष से उलटी, मूर्च्छा तथा पेट के रोग पैदा होते हैं, गुरुता से जड़ता तथा मूर्च्छा उत्पन्न होती है। विष दोष से शरीर क्षीण होता है। जिस प्रकार यह पारद शरीर में गुण तथा अवगुणों को उत्पन्न करता है उसी प्रकार यह धातुओं में भी उत्पन्न करता है इसलिये इस पारद की शुद्धि के लिये नौ कर्मों (संस्कारों) को करना चाहिये।

रससंशोधनार्थं नव कर्माणि[2]—

मर्दनोत्थापने तस्य पातनञ्चैव दीपनम् ।
जारणं सारणं ग्रास-प्रदानं रञ्जनं तथा ॥ ८ ॥

1. 'यथा लोहे तथा देहे इत्यत्र' 'यथा देहे तथा लोहे' एतादृशः पाठः साधीयानिति ।
2. ग्रन्थान्तरे तु पारदस्याष्टादश संस्काराः, तद्यथा—
स्यात्स्वेदनं तदनु मर्दनमूर्च्छनं च
उत्थापनं पतन-रोध(बोध)-नियामनानि ।
संदीपनं गगनभक्षणमात्रमत्र

क्रामणश्चैव सर्वेषां देहिनामुपयोगिकाः ।
मर्दनादेति नैर्मल्यमुत्थापनाल्लघुर्भवेत् ॥ ९ ॥

पातनादेव चाञ्चल्यं हरेत्सृष्टिरसायनम् ।
दीपनान्मुखतेजस्वी जारणान्निर्मलो भवेत् ॥१०॥

सारणादक्षयो भूत्वा लोहग्रासमुखो भवेत् ।
रञ्जनात्सर्वरोगघ्नः क्रामणाद्वेधको भवेत् ॥११॥

ईदृग्विधरसो देहलोहसिद्धिकरः परम् ।

मर्दन, उत्थापन, पातन, दीपन, जारण, सारण, ग्रास, रञ्जन, क्रामण ये पारद की शुद्धि के लिये नौ संस्कार कहे हैं। इन नौ संस्कारों के करने से पारद प्राणियों के सेवन के योग्य हो जाता है। मर्दन संस्कार के करने से पारद में निर्मलता आती है, उत्थापन संस्कार के करने से पारद लघु (हलका) होता है। पातन संस्कार के करने से पारद की चंचलता दूर होती है। दीपन संस्कार के करने से पारद मुख वाला तथा तेजवान् होता है। जारण संस्कार के करने से पारद निर्मल होता है। सारण संस्कार के करने से पारद अक्षय (क्षीण न होने वाला) होता है। धातुओं का ग्रास देने से पारद मुख वाला हो जाता है। रञ्जन करने से सब रोगों को नष्ट करने वाला हो जाता है तथा क्रामण संस्कार के करने से पारद सब धातुओं का वेध करने वाला हो जाता है। इन संस्कारों से शुद्ध किया हुआ पारद शरीर तथा लोह की सिद्धि करने के लिये श्रेष्ठ है ॥ ८-११ ॥

संचारणा गर्भगतिर्द्रुतिश्च ॥
बाह्यद्रुतिः सूतकजारणा स्याद् ग्रासस्तथा सारणकर्म पश्चात् ।
संक्रामणं वेधविधिः शरीरयोगस्तथाष्टादशधात्र कर्म ॥

अथ रससंस्काराः, तत्रादौ मर्दनम्—

त्रिक्षारं पञ्चलवणं नवसारं च चित्रकम् ॥ १२ ॥
त्रिकटुत्रिफलोन्मत्तरजनीगुडसर्षपम् ।
एतत्सर्वं रसेन्द्रस्य [1]त्रिंशांशं निक्षिपेत्समम् ॥ १३ ॥
शृङ्गबेररसेनापि कुमारीस्वरसेन च ।
त्रिदिनं मर्दयेत्सूतमातपे निक्षिपेद् दृढम् ॥ १४ ॥
नवदोषविनिर्मुक्तो जायते निर्मलो रसः ।

जवाखार, सज्जीखार, सुहागा, पांचो नमक, नौसादर, चित्रक, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आमला, धतूरा, हलदी, गुड़, सरसों इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करें। इस चूर्ण को पारद का तीसवाँ भाग लेकर पारद के साथ अदरख और घृतकुमारी के रस में खरल को धूप में रखकर तीन दिन तक दृढता से मर्दन करे ऐसा करने से पारद नौ दोषों से रहित होकर निर्मल (शुद्ध) हो जाता है ॥ १२-१४ ॥

इति मर्दनविधिः ।

नवदोषापनुत्तये शुद्धिभेदप्रदर्शनम्—

कुमारीत्रिफलाचित्रैर्मलं वह्निं विषं क्रमात् ॥ १५ ॥
क्षारद्वयेन कौटिल्यं लवणैरनिवर्तकम् ।
सङ्करं नवसारेण उन्मत्तेन तथोद्गिनम् ॥ १६ ॥
गुरुत्वं त्रिकुटेनैव रजनीगुडसर्षपैः ।
षण्डत्वं च, क्रमादेवं नवदोषान्विनाशयेत् ॥ १७ ॥

पारद के नौ दोषों को दूर करने के लिए दूसरा शुद्धि का उपाय लिखते हैं घृतकुमारी के रस से मर्दन करने से मलदोष, त्रिफला के

---

१. ग्रन्थान्तरे तु त्रिंशांशमित्यत्र 'षोडशांश' मित्यभिहितम् ।

रस से मर्दन करने से अग्निदोष, चित्रक के रस से मर्दन करने से विष दोष दूर होता है। सज्जीखार और जवाखार के साथ मर्दन करने से कौटिल्य दोष, लवण के साथ मर्दन करने से अनावर्त दोष, नौसादर के साथ मर्दन करने से सङ्कर दोष, धतूरे के रस से मर्दन करने से उड्डीन दोष, त्रिकुटा के काथ में मर्दन करने से गुरुत्व दूर होता है। हलदी, गुड़ और सरसों के साथ मर्दन करने से षण्डत्व दूर होता है। इस क्रम से मर्दन करने से नौ दोष दूर होते हैं॥ १५-१७॥

अथ उत्थापनम्—

भाण्डद्वयकृते यन्त्रे लोहविद्याधराह्वये[1]।
सूतं चतुष्पलं तस्य द्विगुणं लवणं क्षिपेत्॥ १८॥
निम्बूरसं प्रस्थमात्रं निक्षिपेद्वह्नि-मृत्स्नया।
तत्सन्धिबन्धनं कृत्वा त्रिदिनं पाचयेच्छनैः॥ १९॥
तेनैवोर्ध्वगतः सूतः पुनरुज्जीवनायते।

दो भाण्ड लेकर उनसे विद्याधर यन्त्र बनावें नीचे के भाण्ड में आठ पल लवण के मध्य में चार पल पारद रक्खें, फिर ऊपर से नीबू का रस चौसठ तोला डालकर घड़े के मुँह के ऊपर दूसरा उलटे मुँह करके घड़ा रख देवें फिर मिट्टी से घड़ों की सन्धि बन्द कर देवें पश्चात् उसे चूल्हे पर स्थापित कर मन्दाग्नि से धीरे-धीरे पकावें। इस क्रिया से पारद का उत्थापन संस्कार होता है इस क्रिया से पारद जीवित होकर ऊपर की तरफ उड़कर लग जाता है॥ १८-१९॥

इत्युत्थापनविधिः।

---

१. रसरत्नसमुच्चये विद्याधरयन्त्रं यथा—
यन्त्रं विद्याधरं ज्ञेयं स्थालीद्वितयसम्पुटात्।
चुल्लीं चतुर्मुखां कृत्वा यन्त्रभाण्डं निवेशयेत्।
तत्रौषधं विनिक्षिप्य निरुन्ध्याद्भाण्डकाननम्।
तेनैवोर्ध्वगतः सूतः पुनरुज्जीवनायते।

अथ [1]अधःपातनविधिः

पाठाकरञ्जस्वरसैः संमर्द्य च रसं पुनः॥ २०॥
कृष्णोन्मत्तरसं पूर्यं दिनमेकं तु पाचयेत्।
अधः पतति तत्सूतो जायते हेमरूपवत्॥[1] २१॥

प्रथम पारद को पाठा और करञ्ज इनके स्वरस में मर्दन कर ऊपर के भाण्ड में लेप कर देवें फिर नीचे के भाण्ड को काले धतूरे के रस से पूर्ण करें। पश्चात् ऊपर के भाण्ड को नीचे के भाण्ड के ऊपर उलटा रखकर दोनों की संधि जोड़ देवें पश्चात् इस संपुट को एक गढ़े में स्थापित कर देवें। फिर ऊपर के घड़े के ऊपर बकरी की मेंगनी तुष आदि की अग्नि जलावें इस प्रकार बारह घण्टे पकावे इस क्रिया से पारद नीचे के भाण्ड में गिरेगा और उसका स्वरूप सुवर्ण के समान हो जावेगा॥ २०-२१॥

इत्यधःपातनविधिः।

अथ [2]दीपनम्—

क्षाराम्ललवणक्षौद्रं ब्रह्मदण्डीयशिग्रुकैः।

---

१. ग्रन्थान्तरे तु—
त्रिफलाशिग्रुशिखिभिर्लवणासुरिसंयुतैः।
नष्टं पिष्टं रसं कृत्वा लेपयेदूर्ध्वभाण्डके॥
ऊर्ध्वभाण्डोदरं लिप्त्वा चाधोभाण्डे जलं क्षिपेत्।
संधिलेपं द्वयोः कृत्वा तद्यंत्रं भुवि पूरयेत्॥
उपरिष्टात्पुटे दत्ते जले पतति पारदः।
अधःपातनमित्युक्तं सिद्धाद्यैः सूतकर्मणि॥

२. अन्ये तु—
कासीसं पञ्चलवणं राजिका मरिचानि च।
भूशिग्रुबीजमेकत्र टंकणेन समन्वितम्॥
आलोड्य कांजिके दोलायन्त्रे पाचयेत्त्रिभिर्दिनैः।
दीपनं जायते सम्यक् सूतराजस्य चोत्तमम्॥

चाण्डालीराजिकाभूर्जटङ्कणैश्च समायुतम् ॥ २२ ॥
रसं संमर्द्य वस्त्रेण बद्ध्वा पोटालिकां ततः ।
यावनालारनालेन क्षिप्त्वा पोटालिकां क्षिपेत्[1] ॥ २३ ॥

तीनों क्षार, अम्ल, द्रव्य, पाँचों लवण, शहद, ब्रह्मदण्डी, सहँजना, चाण्डाली (दिव्यौषधि विशेष), राई, भोजपत्र, सुहागा इनको चूर्ण लेकर इस चूर्ण में पारद का मर्दन करें पश्चात् उस पारद को पोटली में बाँध कर जौ की कांजी में दोलायन्त्र द्वारा एक दिन पकावें। इस क्रिया से पारद का दीपन होता है ॥ २२-२३ ॥

अथ जारणम्—

निर्गुण्डीबृहतीवासारसपूरितभाण्डके ।
रसं क्षिप्त्वा दशदिनं भूतले स्थाप्य चोद्धरेत् ॥ २४ ॥
किंचित्क्षणं निरीक्षेत सदा चलति [2]सूतकः ।

संभालू, बड़ी कटेरी, अडूसा इनके स्वरस से पूर्ण भाण्ड में पारद को स्थापित कर भाण्ड का मुख बन्द कर देवें पश्चात् उस भाण्ड को दस दिन जमीन में रक्खें पश्चात् उसे निकाल लेवें ॥२४॥

इति जारणम् ।

---

१. "यावनालारनालेन क्षिप्त्वा पोटालिकां पचेत्" इत्यत्र "यावनालारनाले तु क्षिप्त्वा पोटलिकां पचेत्' इति सुष्ठु पाठः ।

२. विधिरयं त्रुटित इवेति प्रतीयते ग्रन्थान्तरे जारणविधानम्
यथा--"पट्वम्लक्षारगोमूत्र-स्नुहीक्षीर-प्रलेपिते ।
बहिश्च बद्धं वस्त्रेण भूर्जे ग्रासनिवेशितम् ॥
क्षारारनालसूत्रेषु स्वेदयेत्त्रिदिनं भिषक् ॥"

अथ [1]ग्रासप्रदानम्—

[गन्धकाभ्रक-तैलेन दोलायन्त्रे विपाचयेत् ।
कांस्यपात्रे रसं स्थाप्य लोहपात्रे विनिक्षिपेत् ॥]

इति ग्रासप्रदानम् ।

अथ रञ्जनविधिः—

द्विगुणं गन्धकं चैव हिङ्गुलं च चतुर्गुणम् ॥ २५ ॥
पञ्चभागं मनश्शैलं षडङ्गं च सुवर्चलम् ।
एतत्समाभ्रकं क्षिप्त्वा हंसपादीरसेन च ॥ २६ ॥
ताम्बूली-स्वरसेनापि वासागोरक्षिकारसैः ।
एतत्सर्वं विमर्द्याथ काचकूप्यां विनिक्षिपेत् ॥ २७ ॥
वज्रमृत्स्ना-सुसंमिश्रैः पटैराच्छाद्य सर्वशः ।
बालुकायन्त्र-मार्गेण पचेद् द्वादश-यामकम् ॥ २८ ॥
रक्तवर्णो भवेत् सूत उदयादित्यसन्निभः ।

पारद एक भाग, गन्धक दो भाग, हिङ्गुल चार भाग, मैनशिल पाँच भाग, सोंचल नमक छः भाग, अभ्रक एक भाग सबको एक साथ हंसराज के रस में मर्दन करें, फिर क्रमशः नागरबेल पान के रस में अडूसा तथा गोरक्षकर्कटी के रस में सब को मर्दन करें। पश्चात्

१—विधिरयं त्रुटित इवेति ज्ञायते अतः कारणादस्य भाषाटीकाकरणं व्यर्थमेव । ग्रन्थान्तरे तु ग्रासप्रदानविधिर्यथा--
"क्रमेणानेन दोलायां जार्यं ग्रासचतुष्टयम् ।
ततः कच्छपयन्त्रेण ज्वलने जारयेद्रसम् ॥"
कच्छपयन्त्रमाह—
"नान्दीपयसि शरावोदरकुहरनिविष्टलोहसम्पुटगः ।
हरयोनिरन्तरासं चरति पुटैर्गगनगन्धादि ॥"--र० चि०

उस कल्क को काँच की शीशी में स्थापित करें। तत्पश्चात् शीशी को वज्रमिट्टी और कपड़े से सातबार लिप्त करें, पश्चात् उसे बालुकायन्त्र द्वारा बारह प्रहर पकावें। इस क्रिया से पारद रक्तवर्ण का प्रातः काल के सूर्य के समान हो जाता है ॥ २५-२८ ॥

इति रञ्जनविधिः।

अथ क्रामणम्—

मत्स्यसर्पमयूरादिमहिषीविषसंयुतम्[1]।
मर्दयेदम्लवर्गेण छायाशुष्कं ततो रसम् ॥ २९ ॥

मछली, साँप, मोर तथा भैंस इनके पित्त तथा विष के साथ पारद को अम्ल वर्ग में मर्दन करें, पश्चात् उसे छाया में सुखा लेवें इस क्रिया से पारद का क्रामण[2] संस्कार होता है ॥ ३० ॥

इति क्रामणविधिः।

इति द्वितीयोऽधिकारः।

———

१. 'महिषीविषसंयुतम्' इत्यत्र 'महिषीपित्तसंयुतम्' इत्यपि पाठ।

२. ग्रन्थान्तरे तु—क्रामणं नाम ताम्रादिपरमाणूनामपि सुवर्णादिधातुवर्णादिरूपेण परिणमनम् तद्यथा—

"शिलया निहतो नागो वङ्गं वा तालकेन शुद्धेन।
क्रमशः पीते शुक्ले क्रामणमेतत्समुद्दिष्टम्"

अथ तृतीयोऽधिकारः

अथ सर्वलोहशुद्धिरुच्यते—

सर्वेषां लोहजालानां पाषाणानां विशुद्धये।
एकैकं सुलभं मार्गं वक्ष्ये गन्धाभ्रकं बिना ॥ १ ॥
अम्लक्षाररविक्षीरस्नुहीदुग्धसमन्वितैः।
धत्तूरचित्रत्रिफलास्वरसैर्गोजलान्वितैः ॥ २ ॥
अग्नौ पुनः पुनः पाच्यं सप्तवाराणि क्षालयेत्।

सब प्रकार की धातुओं तथा पाषाण आदि की शुद्धि के लिये बिना गन्धक और अभ्रक के योग के एक ही शुद्धि का सुलभ उपाय है वही बतलाते हैं—अम्लरस, क्षार, थूहर और आक का दूध, धतूरा, चित्रक, त्रिफला इनका स्वरस अथवा क्वाथ और गोमूत्र इन द्रव पदार्थों में पूर्वोक्त धातुओं तथा पाषाण आदि को अग्नि पर तपाकर सातबार बुझावें तथा प्रक्षालन करें। इस क्रिया से उनकी शुद्धि हो जाती है ॥ १-२ ॥

अथ सर्वपाषाणशुद्धिः—

कुमारीमेघनादाब्दत्रिकटुत्रिफलानि च ॥ ३ ॥
कूष्माण्डकदलीशिग्रुगुञ्जासोमार्कजा रसाः।
पञ्चत्वं[1] जातिपुष्पाणि कञ्जाद्रुमद्रुमेन्द्रकाः ॥ ४ ॥
एतेषां स्वरसे सम्यक् भावयेदेकविंशतिम्[2]।

घृतकुमारी, चौलाई, नागरमोथा, त्रिकुटा, त्रिफला, पेंठा, केला, सहँजना, घुंघची, आक इनके रसों में या जावित्री, करञ्ज, इन्द्रजौ,

———

१. अस्यार्थो नावबुध्यते।

२. विधिरयं त्रुटित इति प्रतीयते।

इनमें से किसी के रस में इक्कीस बार भावित करने से सब प्रकार के पाषाण शुद्ध हो जाते हैं ॥ ३-४ ॥

इति सर्वपाषाणशुद्धिः ।

अथ गन्धकशुद्धिरुच्यते

भृङ्गीकुमारीस्वरसमारनालादिपूर्वकम् ॥ ५ ॥
भाण्डवक्त्रे पुटं रुद्ध्वा गन्धचूर्णं विनिक्षिपेत् ।
पुनर्भाण्डं तदाच्छाद्य पुटं दत्त्वा ततः परम् ॥ ६ ॥
स्वाङ्गशीतलकं कृत्वा पुनरुद्धृत्य शुद्धये ।
पश्चात्पुनर्गवां क्षीरैराज्येन च विशोधयेत् ॥ ७ ॥

कांकड़ासिङ्गी तथा घृतकुमारी का रस, कांजी इनको लेकर एक भाण्ड में भरें पश्चात् उस भाण्ड के मुख पर एक वस्त्र बांधकर उस पर गन्धक का चूर्ण डाल देवें फिर एक छोटी हांण्डी से उसे ढककर संपुट को बन्द कर देवें । फिर उसे एक गढ़े में स्थापित कर ऊपर के भाण्ड के चारो तरफ मृदु अग्नि थोड़ी देर देवें । शीतल होने पर उसे खोलें । पश्चात् गन्धक को निकाल कर सुखावें फिर चूर्ण कर घृत मिलाकर लोह की कलछी में गलावें फिर उसे द्रवीभूत गन्धक को दूध में डालकर बुझावें । इस क्रिया से गन्धक की शुद्धि हो जाती है ॥ ५-६ ॥

अथाभ्रकशुद्धिः—

पीतकृष्णाभ्रकं[1] सम्यग् गोक्षीरे [2]भावयेद् दृढम् ।
सर्वदोषविनिर्मुक्तो रसायनकरो भवेत् ॥ ८ ॥

पीले तथा काले अभ्रक को गाय के दूध में भावित करें अथवा

१. 'पीतकृष्णाभ्रकं' इत्यत्र 'तप्तं कृष्णाभ्रकं' इति सुष्ठु पाठः ।
२. 'भावयेत्' इत्यत्र 'सेचयेत्' इति पाठः साधीयान् ।

तप्त करके बुझावें । इस क्रिया से अभ्रक सब दोषों से रहित होकर रसायन हो जाता है । यह सब रोगों को हरने वाला है ॥ ८ ॥

इत्यभ्रकशुद्धिः ।

अथ सर्वपाषाणसत्त्वपातनम्—

उदुम्बरवटाश्वत्थन्यग्रोधार्कस्नुहीद्रुमाः ।
कुरूटिका क्षीरकर्णी कण्डूकी च सुगन्धिका ॥ ९ ॥
एतेषां सर्ववृक्षाणां क्षीरैर्बहु विभावयेत् ।
एकविंशतिवारन्तु एकैकं भावयेद् बुधः ॥ १० ॥
क्षीरकन्दं कडुकन्दं रम्भाकन्दं च सूरणम् ।
गुड-गुग्गुलु-गुञ्जाज्य-मधु-टंकणसंयुतम् ॥ ११ ॥
संमर्द्याञ्जनतुल्या च विशालाचान्धमूषके ।
अधरोत्तरकं क्षिप्त्वा पाषाणं चान्ध्रयेत्ततः ॥ १२ ॥
पट्टमृत्तिकसंयुक्तं सप्तवाराणि कारयेत् ।
ध्मातं गाढं खरांगारैः काचबद्धमयं ततः ॥ १३ ॥
स्वांगशीतलकं कृत्वा उद्धृत्य च निरीक्षयेत् ।
सर्वतः सूक्ष्मरूपाणि दृश्यन्ते मौक्तिका यथा ॥ १४ ॥
सर्वपाषाणसत्त्वानि पतन्तीदृग्विधं भवेत् ।

गूलर, बड़, पीपल, न्यग्रोध (बड़), थूहर, कुरूटिका (बनस्पति-विशेष), क्षीरकर्णी, कण्डूकी (कुकरौंदी), सुगन्धिका, इन सब वृक्षों के दूध से जिसका सत्त्व निकालना हो उसको पृथक्-पृथक् इक्कीस-इक्कीस बार भावित करें । फिर क्षीरकन्द, कड़ुकन्द, केले का कन्द, जमीकन्द, गुड़, गूगल, घूंघची, घी, शहद, सुहागा इनका कल्क मिलाकर मर्दन करे इस कल्क को इतना मर्दन करें कि वह अंजन के समान हो जावे पश्चात् अन्धमूषा में पाषाण के नीचे ऊपर

इस कल्क को रखकर सम्पुट को बन्द कर देवें। इसके ऊपर सात कपरमिट्टी करें। पश्चात् तीव्र अङ्गारों पर रखकर दृढ़ता से धमावें। जब यह विदित हो जावे कि सत्त्व निकल आया तब अग्नि देना बन्द कर देवें और सम्पुट जब अपने आप शीतल हो जावे तब उसे खोलें। इस प्रकार पाक करने पर सम्पुट में मोती के समान छोटे-छोटे कण सत्त्व के मिलेंगे। इस विधि से सब प्रकार के पाषाणों का सत्त्व निकल आता है ॥ ६-१४ ॥

इति सर्वपाषाणसत्त्वपातनम्।

अथ पाषाणवज्रलोहाभ्रकद्रुतिप्रकारः—

पाषाणवज्ररत्नानां सर्वलोहाभ्रकादिनाम् ॥ १५ ॥
द्रुतिरूपं प्रवक्ष्यामि मार्गमेकं सममकम्।
पूर्वोक्तोदुम्बरादीनां क्षीरैः सम्भावयेन्मुहुः ॥ १६ ॥
एकविंशति-वारं तत्कृत्वा सूर्यपुटे क्षिपेत्।
क्षीरकन्दत्रयं चैव सूरणं [1]पञ्चमित्रकम् ॥ १७ ॥
मांसभेद्यश्मभेदी च टंकणं नवसारकम्।
स्वर्जिकारं च पञ्चैतत्क्षिप्त्वा षोडशभागिकम् ॥ १८ ॥
मातुलिङ्गाम्लदाडिम-जम्बीरचणकाम्लकैः।
कृत्वान्धमूषया[2] स्थाप्य वालुकायन्त्रके पचेत् ॥ १९ ॥
बालाग्निना पचेत् सम्यक् शनैश्च घटिकात्रयम्।
पश्चाद्दर्शितमुद्धृत्य[3] द्रुतिस्तिष्ठति सूतवत् ॥ २० ॥

१—"आज्यं गुञ्जाथ सौभाग्यं क्षौद्रञ्च पुरसंज्ञकम्।
एतत्तु मिलितं विज्ञैर्मित्रपञ्चकमुच्यते।
२—'अन्धमूषायाम्' पाठोऽयं प्रतिभाति।
३—पाठोयमशुद्धः प्रतिभाति।

अनेनैव प्रकारेण कुरुते गगनादिकान्।

पाषाण, वज्र, रत्न सब प्रकार की धातुयें अभ्रक आदि द्रव्यों को द्रव रूप में बनाने का एक मर्मयुक्त उपाय बतलाते हैं—पहिले जो सत्त्वपातन के लिए उदुम्बर आदि द्रव्य बतलाये हैं इनसे सत्त्व-योग्य द्रव्य को इक्कीस बार भावित कर सूर्यपुट में रक्खें। पश्चात् तीनों प्रकार का क्षीरकन्द, जमीकन्द, मित्रपञ्चक की औषधियाँ तथा मांसभेदी, पत्थरफोड़ी, सुहागा, नौसादर, सज्जीखार इन पांच द्रव्यों को ग्रहण करें फिर सबको सोलह भाग लेकर विजौरा नीबू, अनार, जम्बीरी नीबू, चणकाम्ल इनके रस में मर्दन करें पश्चात् इस कल्क के मध्य में द्रव्य को रखकर अन्धमूषा में रखकर वालुकायन्त्र में पकावें। इसको मन्दाग्नि द्वारा तीन घड़ी तक धीरे-धीरे पाक करें। स्वाङ्ग-शीतल होने पर निकाल कर देखें तो पारद के समान द्रुति दिखाई देगी। इसी विधि से अभ्रक आदि सब द्रव्यों की द्रुति हो जाती है ॥१५-२०॥

इति पाषाणवज्रलोहाभ्रकद्रुतिप्रकारः।

अथत्रिलोहमारणम्—

शरावे नागवङ्गौ च रसकं प्रक्षिपेत्तथा ॥ २१ ॥
ध्मात्वा चिरं द्रवीभूतं, तदूर्ध्वं च मुहुर्मुहुः।
राजवृक्षत्वचश्चूर्णं विकिरेत्तेन मर्दयेत् ॥ २२ ॥
इत्थं मुहुश्चिरं कुर्वन् त्रिलोहं भस्म जायते।

एक मिट्टी के शराव को चूल्हे पर रखकर उसमें नाग, वङ्ग तथा रसक (खर्पर) डाल देवें, फिर नीचे से अग्नि देवें जब वह द्रवीभूत हो जावे तब उसके ऊपर बार २ अमलतास की छाल का चूर्ण बुरकें तथा एक पीपल के डंडे से या नीम के डण्डे से मर्दन करते रहें। इस प्रकार बहुत देर तक बार-बार करते रहने से पूर्वोक्त द्रव्यों की भस्म हो जाती है ॥२१-२२॥

अथ सर्वलोहमारणम्—

गन्धकं च मनश्शैलं हिङ्गुलं च रसं समम् ॥ २३ ॥
मातुलुङ्गाम्लजम्बीररसैः सम्मर्द्य तेन तत् ।
शुल्बायोहेमतारादिकांस्यपत्राणि लेपयेत् ॥ २४ ॥
इत्थं मुहुः सप्तवारं लेपयेदातपे क्षिपेत् ।
मूषायामथ संस्थाप्य तत्पत्राण्यधरोत्तरम् ॥ २५ ॥
सम्यक् तद्रोधनं कृत्वा पुटयेत्सप्तवारकम् ।
स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य[1] तस्मात्तद्बुद्बुदधृतं[2] ध्रुवम् ॥ २६ ॥

गन्धक, मैनशिल, हिङ्गुल, पारद इनको समान लेकर विजौरा नीबू के रस में तथा जम्बीरी नीबू के रस में मर्दन करें। पश्चात् इस कल्क का ताम्र, लोह, सुवर्ण, चांदी तथा कांसी इनके पत्रों पर लेप करें इस तरह बार-बार सात बार लेप करें और सात ही बार उसे धूप में रख देवें। पश्चात् इन पत्रों को मूषा में स्थापित करें नीचे-ऊपर थोड़ा कल्क पूर्वोक्त गन्धक आदि द्रव्यों का और रख देवें, फिर भली प्रकार बन्द कर देवें तथा गजपुट में रख देवें। इस प्रकार सात पुट देवें तथा स्वाङ्गशीतल होने पर ही सम्पुट को गजपुट से निकालें। इस विधि से निश्चय ही धातुओं की भस्म हो जाती है ॥२३-२६॥

इति सर्वलोहमारणप्रकारः ।

१—स्वाङ्गशीतलं यथा—
वह्निस्थमेव यद् द्रव्यं समुपैति तु शीतताम् ।
स्वाङ्गशीतं तदुद्दिष्टं स्वतः शीतञ्च तन्मतम् ।

२—'तस्मात्तद्बुद्बुदधृतं ध्रुवम् ।' इत्यपेक्षया 'तन्म्रियते ध्रुवम्' पाठोऽयं सुष्ठु प्रतिभाति ।

अथाभ्रकमारणम्—

व्योमपत्राणि सौवीरमार्कवस्वरसे क्षिपेत् ।
त्रिदिनानि ततः क्षिप्त्वा वस्त्रे व्रीहिषु [1]मर्दयेत् ॥ २७ ॥
तद् गृहीत्वा स्नुहीक्षीरै-र्वासानिर्गुण्डिकारसैः ।
वटार्कक्षीरधुत्तूररसैः सम्मर्द्य तत्पुनः ॥ २८ ॥
क्रमात् सप्तपुटं कृत्वा [2]सिन्दूरं म्रियते ध्रुवम् ।

वज्राभ्रक के पत्र लेकर उन्हें कांजी में तथा भांगरे के रस में तीन दिन रक्खें। पश्चात् अभ्रक को निकाल कर धान्यों के बीच में तथा वस्त्र के मध्य में रखकर मर्दन करें। पश्चात् उसमें सारभाग जो मिले उसे शुद्ध अभ्रक समझ कर बड़ तथा आक के दूध में मर्दन करें फिर धतूरे के रस में मर्दन करें तत्पश्चात् पुट देवें। इस प्रकार सात पुट देने से निश्चय ही अभ्रक की भस्म हो जाती है ॥२७-२८॥

प्रकारान्तरेण गगनमारणम्—

वटमूलस्य च क्वाथैस्ताम्बूलीपत्रसारतः ॥ २९ ॥
वासामत्स्याक्षिकाभ्यां च मीनाक्ष्या च कठिल्लया ।
पयसा वटवृक्षस्य मर्दितं पुटितं घनम् ॥ ३० ॥
भवेद्विंशतिवारेण [3]सिन्दूरं रुचिरं भवेत् ।

अभ्रक को बड़ की जड़ के क्वाथ में नागरबेल पानों के रस में अडूसा, मत्स्याक्षी तथा कठिल्लक (कठगूलर) के रस में तथा बड़ के दूध में मर्दन कर पुट देने से बीस पुट में अभ्रक की भस्म सिन्दूर के समान हो जाती है ॥२९-३०॥

इत्यभ्रकमारणम् ।

१—व्रीहिषु—व्रीहियुक्तवस्त्रे क्षिप्त्वेत्यर्थः ।

२—'सिन्दूरं' इत्यपेक्षया 'गगनं' इति पाठः सुष्ठु प्रतिभाति ।

३—सिन्दूरम् = व्योमभस्म सिन्दूरप्रभं भवेदित्यर्थः ।

अथ वज्रमारणम्—

मेषमत्कुणरक्तेन भावयेदेकविंशतिम् ॥ ३१ ॥
मुहुः [1]सूर्यपुटे स्थाप्य पश्चान्नागार्जुनीरसैः ।
वज्रतुण्ड्याख्यजन्तोश्च जठरे स्थाप्य वज्रकम् ॥ ३२ ॥
मलपञ्चकसंयुक्तं[2] निक्षिपेद्वज्रमूषके ।
पार्श्वे मृदान्ध्रयित्वाथ महागजपुटे दहेत् ॥ ३३ ॥
भस्मीभवति तद्वज्रं स्वाङ्गशीतलमुद्धरेत् ।

वज्र को भेड़ तथा खटमल के रक्त में धूप में रखकर इक्कीस बार (इक्कीस दिन) भावित करें-फिर नागार्जुनी के रस में इक्कीस बार भावित करें। तत्पश्चात् उस वज्र को वज्रतुण्ड (मेंढक) को पेट में स्थापित करें, फिर उसके ऊपर-नीचे मित्रपञ्चक के द्रव्य रखकर उसे वज्र-मूषा में स्थापित करें। पश्चात् मूषा की सन्धियों को कपरमिट्टी से बन्द कर महागजपुट में रखकर पकावें। इस विधि से वज्र की भस्म हो जाती है, स्वाङ्गशीतल होने पर उसे निकालें ॥३१-३३॥

अथ रसस्य विचित्रमारणप्रकाराः ।

तत्र प्रथमो मारणप्रकारः—

[3]सिद्धमूलिकनामाख्य-मूलिकास्वरसेन च ॥ ३४ ॥

१—सूर्यपुटं यथा—

द्रव्याणां भावितानान्तु भावनौषधजै रसैः ।
शोषणं सूर्यतापे यत् तत्सूर्यपुटमुच्यते ॥

रसतरङ्गिणी—

२—'मलपञ्चकसंयुक्तं' इत्यपेक्षया 'मित्रपञ्चकसंयुक्तं' इति पाठः सुष्ठु प्रतिभाति ।

३—सिद्धमूलिकाः = वनस्पतिविशेषाः रसकर्मणि प्रयोज्याः ।

सूतं त्रिवारं सम्मर्द्य निक्षिपेल्लोहपात्रके ।
ध्माते तु सुलभं भस्म जायते घटिकार्धके ॥ ३५ ॥

पारद को सिद्धमूलिका और मूलिका नामक वनस्पतियों के रस में तीन वार मर्दन करके लोह के पात्र में स्थापित करें फिर उस पात्र को चूल्हे पर स्थापित कर नीचे अग्नि प्रज्वलित करें। इस विधि से आधी घड़ी में पारद की भस्म हो जाती है ॥३४-३५॥

अथ द्वितीयो मारणप्रकारः—

गन्धकं सूततुल्यं च क्षिप्त्वा तन्मूलिकारसैः ।
रक्तमण्डल-धुत्तूररसैः सम्मर्द्य निक्षिपेत् ॥ ३६ ॥
वालुकायन्त्रमार्गेण काचकुप्यां च पाचयेत् ।
दिनार्धे नयनानन्दं सिन्दूरं भवति ध्रुवम् ॥ ३७ ॥

शुद्ध पारद और गन्धक समान भाग लेकर उन्हें मूलिका के स्वरस में मर्दन करें तत्पश्चात् लाल चित्रक तथा धतूरे के रस में

ये रसमूलिकाः तानाह ।

सर्पाक्षी क्षीरिणी बन्ध्या मत्स्याक्षी शङ्खपुष्पिका ।
काकजङ्घा शिखिशिखा ब्रह्मदण्ड्याखुकर्णिका ॥
वर्षाभूः कन्चुकी दूर्वा सैर्यकोत्पलशिम्बिका ।
शतावरी वज्रलता वज्रकन्दोऽग्निकर्णिका ॥
मण्डूकपर्णी पाताली चित्रको ग्रीष्मसुन्दरः ।
काकमाची महाराष्ट्री हरिद्रा तिलपर्णिका ॥

१—श्वेतार्कशिग्रुधत्तूर-मृगदूर्वा रसाङ्कुशा ।
२—रम्भा रक्ता च निर्गुण्डी लज्जालुः सुरदालिका ॥
३—जाती जयन्ती श्रीदेवी भूकदम्ब-कुसुम्भकः ।
४—कोषातकी वीरकणा लाङ्गली कटुतुम्बिका ॥
५—चक्रमर्दोऽमृताकन्दः सूर्यावर्तेपुपुङ्खिके ।
६—वाराही हस्तिशुण्डी च प्रायोऽमू रसमूलिकाः ।

एक-एक दिन मर्दन करें फिर काचकूपी में रखकर बालुकायन्त्र द्वारा पाक करें। इस क्रिया से आधे दिन पाक करने से ही नेत्रों को आनन्द देने वाला अर्थात् अत्यन्त सुन्दर सिन्दूर सिद्ध हो जाता है ॥ ३६-३७ ॥

अथ रसेश्वरकृष्णभस्म—

तन्मूलिका-रसेनैव नीलभृङ्गी-रसेन च।
कृष्णवर्णत्वमायाति सूतो जम्बूफलोपमः ॥ ३८ ॥

प्रथम पारद को मूलिका के स्वरस में मर्दन करें तत्पश्चात् नील-भृङ्गी के रस में मर्दन कर पाक करें तो पारद की जामुन के फल के समान काली भस्म हो जाती है ॥३८॥

अथ रसस्य पीतभस्म—

तन्मूलिका-रसेनैव वासायाः स्वरसेन च।
पीतवर्णं भवेद्भस्म यामार्धे सुमनोहरम् ॥ ३९ ॥

प्रथम मूलिका के स्वरस में पारद को मर्दन कर तत्पश्चात् अडूसे के रस में मर्दन कर पाक करें तो आधे प्रहर में पारद की पीले रंग की भस्म हो जाती है। यह अत्यन्त मनोहर होती है ॥३९॥

अथ रसस्य श्यामभस्म—

तन्मूलिका-रसेनैव कृष्णोन्मत्त-रसेन च।
श्यामवर्णं भवेद् भस्म यामार्धे सुमनोहरम् ॥ ४० ॥

प्रथम पारद को मूलिका के स्वरस में मर्दन कर तत्पश्चात् काले धतूरे के रस में मर्दन कर पाक करें तो आधे प्रहर में ही अत्यन्त मनोहर श्यामवर्ण की भस्म हो जाती है ॥४०॥

रसस्य कर्बुर भस्म—

तन्मूलिका-रसेनैव जम्बूमूल-रसेन च।
मर्दयेत् सूतराजेन्द्रं कर्बुरं भवति क्षणात् ॥ ४१ ॥

पारद को प्रथम मूलिका के रस में तत्पश्चात् जामुन की जड़ के रस में मर्दन करें तो पारद कर्बुर (मटियाली) रंग का शीघ्र हो जाता है ॥४१॥

पूर्वोक्तवर्णानां भस्मनां गुणविशेषाः—

श्वेतवर्णं ज्वरघ्नं च रक्तवर्णं त्रिदोषनुत्।
पीतवर्णं हरेत्कुष्ठं श्यामलं सर्वदोषनुत् ॥ ४२ ॥
कृष्णवर्णं मनुष्याणां सेवया देह-सिद्धिदम्।
कर्बुरं वृष्यकारि स्यादभीष्ट-गुणदं भवेत् ॥ ४३ ॥

अब पारद की विविध प्रकार की भस्मों के गुण बतलाते हैं—श्वेतवर्ण की पारद भस्म ज्वर को दूर करने वाली है। रक्तवर्ण की पारद भस्म त्रिदोष को नष्ट करती है। पीतवर्ण की कुष्ठ को नष्ट करती है। श्यामवर्ण की सब दोषों को दूर करने वाली है। कृष्णवर्ण की भस्म सेवन करने से मनुष्यों को देह की सिद्धि देने वाली है। कर्बुर (मटियाली) भस्म वाजीकरण है तथा इच्छित गुणों को देने वाली है ॥४२-४३॥

अथ सिद्धपूजाविधिप्रकारः—

अथ वक्ष्यामि सूतस्य सिद्धपूजाविधिक्रमम् ॥ ४४ ॥
शुक्लपक्षे त्वशून्ये च सुमुहूर्ते शुभे दिने।
एकान्ते भूगृहे शुद्धे दृष्ट्वा कर्म समारभेत् ॥ ४५ ॥
सम्यग् जितेन्द्रियो भूत्वा दन्तधावनपूर्वकम्।
कृत्वा तु मङ्गलं स्थानं शुचिर्भूत्वोपवासकम् ॥ ४६ ॥
अधःशायी ब्रह्मचारी नियमैकः समाचरेत्।
गृहमध्ये विरच्यादौ सहस्रदल-पद्मकम् ॥ ४७ ॥
प्रागाद्यष्ट-दिशास्वस्य पद्मान्यष्ट-दलानि च।
पृथक् प्रदेशे पद्मानि नवाष्टदलसंयुतम् ॥ ४८ ॥

सहस्रदल-पद्मोत्थं रसं शुद्धं च निक्षिपेत् ।
अष्टदिक्-सर्वपद्मार्थ-मुपवेष्ट्याष्ट-सिद्धकान् ॥ ४९ ॥
नवनाथान् सिद्धरूपान् नवदुर्गाश्च ताः स्त्रियः ।
कृत्वार्घ्यपात्र-सौगन्धि गन्धपुष्पैर्मनोहरैः ॥ ५० ॥
धूपदीपैरलङ्कृत्य दिव्यवस्त्रैः प्रपूजयेत् ।
दिव्यान्नैर्मधुमांसैश्च प्रीणयित्वा च तान्नरः ॥ ५१ ॥
नमस्कृत्य स्वयं तेषां तासां चाथानुयाचयेत् ।
अथवा बुद्धिहीनोपि तूष्णीं भोजनमाचरेत् ॥ ५२ ॥
सोऽपि शीघ्रं मतिं गत्वा तस्य वंशक्षयो [1]भवेत् ।

अब पारद की सिद्ध पूजाविधि का क्रम लिखते हैं—शुक्लपक्ष में तथा जो दिन शून्य न हो ऐसे अशून्य दिन में, शुभ मुहूर्त तथा शुभ दिन में, एकान्त में, जमीन के भीतर गृह में शुद्धता देख कर कर्म प्रारंभ करें। रस की सिद्धि करने वाला मनुष्य भली प्रकार जितेन्द्रिय होकर दंतधावन करके माङ्गलिक स्नान करें और पवित्र होकर उपवास करें। जमीन पर सोवे, ब्रह्मचर्य तथा नियम से रहे, घर के मध्य में कमल के पत्तों से मण्डप बनावें। पूर्व-पश्चिम आदि आठों दिशाओं में कमल के आठ पत्र लगावे, नीचे के प्रदेश में पृथक्-पृथक् नौ और आठ दलों से युक्त कमल के पत्र बिछावें फिर कमल के पत्र के ही ऊपर पारद को स्थापित करें। आठो दिशाओं में कमल के पत्रों पर आठों सिद्धों को स्थापित करें। सिद्धि को देने वाले नौ नाथों को और नव दुर्गाओं को स्थापित करें। प्रथम अर्घ देवें स्नान करावें सुगन्धित द्रव्य (इत्र-तेल आदि) तथा सुगन्धित पुष्प चढ़ावें, धूप दीपों से अलंकृत करें तथा दिव्य तथा मनोहर वस्त्रों से पूजा करें,

१—श्लोकोऽयं प्रकृतार्थविसंवादीति प्रतीयते ।

दिव्य-अन्न मधु, मांस आदि से मनुष्य उनको प्रसन्न करके नमस्कार करके इच्छित कामना की उनसे याचना करें ॥४४-५२॥

इति सिद्धपूजाविधिक्रमः ।

अथेष्टार्थसिद्धिगुटिकाप्रकारः—

अङ्कोलार्कपलाशादि-कण्टकी-गिरिकर्णिकाः ॥ ५३ ॥
सुरदाली च गुञ्जा च क्षुद्रालक-पुनर्नवाः ।
एते दश द्रुमाः श्वेत-केसराः श्वेतपुष्पकाः ॥ ५४ ॥
तेषां तुल्यानि बीजानि चूर्णीकृत्यातिसूक्ष्मकम् ।
तन्मूलत्वग्रसेनैव अजाक्षीरेण भावयेत् ॥ ५५ ॥
तैलमर्कपुटेनैव उद्धृत्य बहु संग्रहेत् ।
शुद्धसूतं पलन्त्वेकं तैलं तत्तुल्यमात्रकम् ॥ ५६ ॥
अधरोत्तरकं कृत्वा वज्रमूषान्तरे क्षिपेत् ।
ध्मात्वा मुहूर्तमात्रेण बद्धो भवति तद्रसः ॥ ५७ ॥
अनेन सर्वे पाषाणं रागबद्धत्वमाप्नुयात् ।
इष्टार्थसिद्धिगुटिका नाम्ना लोके प्रकीर्त्तिता ॥ ५८ ॥
एतामेव जलोत्पन्ननारिकेलेन पाचयेत् ।
निक्षिपेद्वाक्षि यो धीमान् देवैरपि न दृश्यते ॥ ५९ ॥
जललोहाग्निशुल्बादि वाचास्तम्भं करोति च ।
कृष्णगोक्षीरसारेण पक्त्वा वाक्षि त्वहर्निशम् ॥ ६० ॥
तत्सारसेवया देहसिद्धिर्मासत्रयाद्भवेत् ।
आयुष्यवृष्य-सन्तान-तेजो-बलकरो भवेत् ॥ ६१ ॥
षण्माससेवया नित्यं जरामरणवर्जितः ।
गरुत्मत्-पक्षितैलेन दोलायन्त्रेण पाचयेत् ॥ ६२ ॥

लोहजालसमुद्रस्य वडवानलवद्भवेत् ।

ब्रह्मदण्डी, चाण्डाली, चित्रक, मूर्वा, अर्चिका (?) की छाल जवाखार, सज्जीखार, तूतिया, सेंधा नमक, नौसादर इनको समान भाग लेकर बिजौरा नीबू के रस में मर्दन करें पश्चात् मूषा के मध्य में पारद को रक्खें उस पारद के नीचे-ऊपर पूर्वोक्त कल्क को रक्खें पश्चात् उसे अग्नि पर धीरे-धीरे धमावें, स्वाङ्गशीतल होने पर निकाल लेवें इस प्रकार सात बार करें। ऐसा करने से पारद का दीपन होता है वह मुखवाला हो जाता है, व्याघ्र के समान क्षुधा से पीड़ित होता है। वह सम्पूर्ण धातुओं को समुद्र की बड़वाग्नि के समान दीप्त होकर खा जाता है ॥६८-७०॥

इति दीपनप्रकारः ।

अथ ग्रासप्रदानप्रकारः—

ततस्तस्य चतुर्थांशं ग्रासं दत्त्वा सुहाटकम् ॥ ७१ ॥
भूसाररुदन्त्याश्च स्वरसं पूरयेन्मुहुः ।
आतपे याममात्रेण जीर्णं भवति हाटकम् ॥ ७२ ॥
पुनस्तस्य तृतीयांशं ग्रासं दत्त्वा क्षणं ग्रसेत् ।
द्वितीयांशं पुनस्तूर्णं दधते च तथोत्तरम् ॥ ७३ ॥
समांशं निक्षिपेदेवं ग्रासयित्वा च बुद्धिमान् ।
तदूर्ध्वं सर्वलोहानां क्रमं ज्ञात्वा विनिर्दिशेत् ॥ ७४ ॥
प्रतिक्षणं प्रतिदिशेदधिकं दीपनं भवेत् ।
यथा पलप्रमाणस्य रसबद्धस्य हाटकम् ॥ ७५ ॥
सहस्रपल-मादातु ग्रासं चेद्यदि शक्तिमान् ।
तथा तस्य मुखं बद्धं क्षमो भवति दैविकम् ॥ ७६ ॥
यदि वा तद्बद्धश्चेद्शक्यो धूर्जटेरपि ।

कियन्ति लोहजालानि सन्ति सर्वाणि भूतले ॥ ७७ ॥
ग्रासं दातुं सुसंपूर्णं ब्रह्मा सम्यक् प्रशंसते ।

बुभुक्षित पारद से चतुर्थांश सुवर्ण लेकर उसके साथ मर्दन करें पश्चात् उसी खरल में भूसारस (कदम्ब ?) और रुद्रवन्ती का रस डाल कर धूप में रख देवें। इस क्रिया से एक प्रहर में सुवर्ण जीर्ण हो जाता है। फिर यदि पारद का तृतीयांश सुवर्ण लेकर ग्रास दिया जावेगा तो पारा शीघ्र ही ग्रास कर जावेगा। फिर इसी विधि से पारद से आधे सुवर्ण का ग्रास देवें फिर पारद से आधे सुवर्ण का ग्रास देवें पश्चात् समान भाग सुवर्ण का ग्रास देवें इससे अधिक भी ग्रास देना हो तो क्रमानुसार देवें। जितना अधिक ग्रास दिया जावेगा उतनी ही अधिक पारद की ग्रास की शक्ति बढ़ेगी। यदि एक पल बद्ध पारद में एक हजार पल सुवर्ण का ग्रास दिया जावे तब उसके मुख को बद्ध करने के लिये देवता ही समर्थ हो सकते हैं। यदि वह अबद्ध हो जावे तो उसको बद्ध करना शंकर के लिये भी कठिन है। पृथ्वी पर कितनी ही धातुयें तथा उनके द्वारा पारद को बद्ध करने के उपाय हैं सम्पूर्ण ग्रासों को देने से ब्रह्मा भी प्रसन्न होते हैं ॥७१-७७॥

इति ग्रासप्रकारः ।

अथ रसमुखबन्धप्रकारः—

रसबन्धस्य मर्मातिगूढं वक्ष्यामि गूढवान् ॥ ७८ ॥
समन्त्रमुक्तमार्गेण गूढं तद्बद्धमाचरेत् ।
कृष्णागोरोचनं कृष्णसाररोचनमेव च ॥ ७९ ॥
प्रथमार्तवजं रक्तं गजशुक्तं चतुष्टयम् ।
एतत्सर्वं समांशं च स्त्रीस्तन्येन च मर्दयेत् ॥ ८० ॥
त्रिबिन्दुमात्रं तद्बद्धम् मन्त्रयुक्तं प्रयोजयेत् ।

पारद के बन्धन का मर्मयुक्त जो अत्यन्त गूढ़ उपाय है उसको कहेंगे यदि मन्त्र के साथ इस विधि से आचरण किया जावेगा तो अवश्य ही पारद बद्ध होगा। काला गोरोचन, कृष्णसार रोचन पहिली बार जो स्त्री रजस्वला हुई हो उसके आर्तव का रक्त गज-शुक्त (?) इन चारों को समान भाग लेकर स्त्री के दूध मे मर्दन करें। मन्त्र उच्चारण करते हुए पूर्वोक्त कल्क को तीन बिन्दु डालकर पारद को मर्दन करने से पारद बद्ध हो जाता है ॥ ७८-८० ॥

अथ पारदमुखबन्धनमन्त्रः—

मन्त्रः—ॐ घटघटाय महारसभैरवाय मुखं बन्ध
मुखं बन्ध सुभीटय सुभीटय हुं फट् स्वाहा ॥ ८१ ॥

यह पारद के मुख को बाँधने वाला मन्त्र है।

तमदृष्ट्वा तथा धीमान् प्रयोगं कुरुते क्षणात् ॥ ८२ ॥
मुखबन्धमवाप्नोति रसेन्द्रः सक्षयो भवेत्।
तस्मिन्काले महाघोषो जायतेऽशनिपातवत् ॥ ८३ ॥
तस्माज्जीवति यो मर्त्यः स ईश्वरसमो भवेत्।
अथवा तद्भयं गत्वा मृतो भवति सो नरः ॥ ८४ ॥
आदौ भैरवमाराध्य निर्विघ्नेन समापयेत्।
महाभैरव-मन्त्रेण कुर्याद्रक्षामथात्मनः ॥ ८५ ॥
यथा तन्मुखबन्धः स्यात् तथा क्षीरे विनिक्षिपेत्।
एकविंशतिवारेण गोक्षीराब्धि पिबेच्च सा ॥ ८६ ॥
तदूर्ध्वं निक्षिपेत्कूपे तटाके वा जलाशये।
तज्जलानि च सर्वाणि सप्तरात्रेण सा पिबेत् ॥ ८७ ॥
श्रीचन्दनं च कर्पूरं समांशं मेलयेज्जले।
अहोरात्रं च संस्थाप्य कुर्वीत च सुरक्षितम् ॥ ८८ ॥

गुटिकां तां विनोदाय मस्तके क्षिप्य यो नरः।
भुञ्जत्यपारमन्नं च वडवानलवद् भवेत् ॥ ८९ ॥

उस मन्त्र को विना प्रयोग किये जब प्रयोग करता है तब मुख बन्ध हो जाता है तथा पारद का क्षय होता है उस समय बहुत तेज वज्रपात के समान आवाज होती है जो मनुष्य उससे जीवित बच जाता है वह ईश्वर के समान हो जाता है अथवा उसके भय के कारण मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होता है। इसलिये प्रारम्भ में भैरव की पूजा करके उसे निर्विघ्न समाप्त करें। महाभैरव मन्त्र से अपनी रक्षा करे। जब पारद का मुख बद्ध हो जावे तब उसे गाय के दूध में डाल देवें। इक्कीस दिन में वह गुटिका गाय के बहुत से दूध का पान कर लेगी इसके पश्चात् कूए, तालाब आदि में डाल देवें उस जल को वह सात दिन में पान कर लेगी। चन्दन और कपूर इनको समान भाग लेकर चूर्ण कर जल में छोड़ देवें और उस जल में एक दिन-रात गुटिका को रहने देवें। इस गुटिका को विनोद के लिये यदि मनुष्य मस्तक में धारण कर लेवे तो वह मनुष्य बहुत सा अन्न खा जाता है उसकी अग्नि वडवानल के समान हो जाती है ॥८२-८९॥

इति रसमुखबन्धप्रकारः।

अथ वेधामुखरसः—

गन्धकाभ्रकतैलं तद् ग्रासं दत्वा सुबुद्धिमान्।
पञ्चसाहस्रवेधी च तारे नागे तथा भवेत् ॥ ९० ॥
अयस्ताम्रद्वयेऽर्धं च वङ्गं च द्वादशं भवेत्।
अभ्रकस्य द्रुतिं सम्यग् मेलयित्वा रसेन च ॥ ९१ ॥
गुटिका सा क्षयाख्या च आवर्त्यान्ते क्षयी भवेत्।
तत्तारसेवया वाचि मोहजालं विनाशयेत् ॥ ९२ ॥
तारग्रासं च कुरुते वङ्गताम्रद्वयेऽर्धकम्।
सहस्रदशवेधी च शुद्धतारो भवेत् पुनः ॥ ९३ ॥

गन्धक का तेल और अभ्रक की द्रुति का ग्रास बुद्धिमान मनुष्य को चाहिये कि वह पारद में देवे, ऐसा करने से पारद नाग और चाँदी में पाँच हजारवें भाग से वेध करने वाला हो जाता है। लोह और ताम्र आधा २ भाग और वङ्ग बारह भाग और फिर उसमें भली प्रकार अभ्रक की द्रुति और पारद मिलावें यह क्षयाख्या गुटिका हो जाती है। इसको सेवन करने से वाणी का मोहजाल नष्ट होता है। वेधामुख पारद चाँदी का ग्रास करने वाला है। वङ्ग और ताम्र इन दोनों को आधा-आधा मिलाकर इस पारद के दश हजारवें भाग से वेध करने पर शुद्ध चाँदी हो जाती है ॥९०-९३॥

इति वेधामुखरसप्रकारः।

अथ धूमवेधी रसः—

सहस्रवेधी पाषाणं माक्षिकं च मनश्शिला।
हिङ्गुलं तालकश्चैव हारिद्राख्यं च गन्धकम् ॥ ९४ ॥

एतत्सर्वं समं कृत्वा मातुलुङ्गाम्लमर्दितम्।
चणप्रमाणवटिकां कृत्वा ग्रासं ददाति च ॥ ९५ ॥

षट्त्रिंशत्पुटमात्रेण धूमवेधी भवेद्रसः।
लोहसिद्धिर्यथैवाभूद् देहसिद्धिर्भवेत्तथा ॥ ९६ ॥

पारद, सुवर्ण माक्षिक, मैनशिल, हिङ्गुल, हरिताल, हारिद्र विष, गन्धक इन सबको समान भाग लेकर बिजौरा नीबू के रस में मर्दन करें पश्चात् चने की बराबर गोली बना कर उसका ग्रास देवें। इसके छत्तीस ग्रास देने से पारद धूमवेधी हो जाता है। इसके योग से जिस तरह लोह-सिद्धि होती है उसी तरह देह-सिद्धि भी होती है।

इति हिन्दी-टीकायां रसकौमुद्यां
द्वितीयोऽधिकारः।

अथ तृतीयोऽधिकारः

अथ जगन्मोहनरसः—

[1]नवरत्नाष्टलोहानां[2] भस्म सूतस्य भस्म च।
कृत्वा समांशं तत्सर्वं मेलयित्वा विचक्षणः ॥ १ ॥
तत्त्रिंशांशं विषं कुष्ठं त्रिकटु त्रिफला तथा।
टङ्कणं गन्धकं चैव माक्षिकं च मनश्शिला ॥ २ ॥
एतत्सर्वं विनिक्षिप्य मर्दयेच्च करण्डके।
तस्य सर्षपमात्रन्तु प्रयोगं कुरुते भिषक् ॥ ३ ॥
श्लेष्मज्वराणां भृङ्गस्य रसेन गुडसंयुतम्।
पित्तज्वराणां [3]मैरेय-रसशर्करयान्वितम् ॥ ४ ॥
वातज्वराणां स्वरसैर्नागवल्ल्या दलस्य च।
एकाहिकद्व्याहिकस्य भूधात्री-स्वरसेन च ॥ ५ ॥

१—नव रत्नानि यथा—
मुक्ताफलं हीरकञ्च वैदूर्यं पद्मरागकम्।
पुष्परागञ्च गोमेदं नीलं गारुत्मतं तथा॥
प्रवालयुक्तान्येतानि महारत्नानि वै नव।

२—अष्ट लोहानि यथा—
सुवर्णं रजतं ताम्रं त्रपु कृष्णायसं समम्।
अहाङ्गमिति बोद्धव्यं द्वितीयं पञ्चलोहकम्॥
पञ्चलोहसमायुक्तैः कान्त-मुण्डकतीक्ष्णकैः।
कल्पितः कथितो धीरैरष्टलोहाभिधो गणः॥

३—मैरेयं धातकीपुष्पं गुडं धान्याम्लसंहितम्।

त्र्याहिकस्याजदुग्धेन तथा चातुर्थिकस्य च ।
विषमाणां ज्वराणां च निम्बपत्ररसेन च ॥ ६ ॥
अभिघातस्य गोजिह्वा-रसेन मधुना सह ।
दोषज्वरस्य वासायाः शिग्रुमूल-रसेन च ॥ ७ ॥
तत्तन्निमित्तोत्पन्नानां ज्वराणां कण्टकीरसैः ।
त्रिदोषाणां च सर्वेषामार्द्रकस्य रसेन च ॥ ८ ॥
ईदृग्विधानुपानैश्च ज्वराणां च प्रयोजयेत् ।
सर्वाङ्गवातिकस्यार्क-मूलानां स्वरसेन च ॥ ९ ॥
धनुर्वातस्य निर्गुण्ड्या पक्षवातस्य चाभया ।
सुप्तवातस्य[1] गोमूत्रैः शेषवातस्य पूर्ववत् ॥ १० ॥
तथा [2]वृश्चिकवातस्य शृङ्गकेसरकान्वितम् ।
तदन्येषां च वातानां सर्वेषामुष्णवारि तत् ॥ ११ ॥
तत्तत्सौम्यानुपानैश्च प्रयोगं कुरुते क्रमात् ।
सर्वाङ्गं श्वेतकुष्ठश्च [3] नीलभृङ्गी-रसेन च ॥ १२ ॥
तदन्येषां च कुष्ठानां मधुना सम्प्रयोजयेत् ।
जलोदरस्य भूदन्तीमूलानां स्वरसान्वितम् ॥ १३ ॥
महोदरस्य भूनिम्ब-वज्रतैलेन योजयेत् ।
अन्येषामुदराणां च गिरिकर्णिकया समम् ॥ १४ ॥

१—स्वपन्त्यङ्गानि वातेन यस्मिंस्तत्सुप्तवातकम् ।
२—व्यथा वृश्चिकवाते तु मता वृश्चिकविद्धवत् ।
३—"सर्वाङ्गं श्वेतकुष्ठश्च" इत्यत्र 'सर्वाङ्गश्वेतकुष्ठे तु' इति पाठः सुष्ठु प्रतिभाति ।

अश्मर्यां शर्करायुक्तमश्मभेदी-रसेन च ।
बहुमूत्रस्य कण्टक्या मूलानां स्वरसेन च ॥ १५ ॥
मधुशुक्लेक्षुमेहार्त्तः......लपोटक-संयुतम् ।
रक्तमेहस्य गोक्षीरैर्नवनीतेन वा तथा ॥ १६ ॥
तन्मूत्रं तक्रमेहस्य उदुम्बर-रसेन च ।
तदन्येषां च मेहानां तिलपिष्टरसान्वितम् ॥ १७ ॥
अर्शसां गुडयुक्तेन काकोदुम्बरिकान्वितम् ।
मुण्ड्यार्द्रकरसैर्युक्तं शूलानां च प्रयोजयेत् ॥ १८ ॥
गुल्मानां च कुबेराक्षी-चिञ्चा-भस्म-रसेन च ।
वह्निचूर्णेन पाण्डूनां क्षयशोफस्य गोपयः ॥ १९ ॥
क्षयस्य गोतेघृनैव कदलीरस-संयुतम् ।
कामलायां निशायुक्तं कण्टकीस्वरसेन च ॥ २० ॥
शिरःशूलादिरोगाणां [1]शुष्यानस्य करोति च ।
व्रणानामखिलानां च लेपयेद् गोघृतेन च ॥ २१ ॥
तुलसीरससंयुक्तं नाशयेत् सर्ववान्तिकम् ।
महागदानां सर्वेषां सेवयेदेक-मण्डलम्[2] ॥ २२ ॥
अर्धमण्डलमात्रं तदन्येषां सम्प्रयोजयेत् ।
महारोगप्रयोगाणामौषधं सर्षपद्वयम् ॥ २३ ॥
त्रिमासं सेवयेन्नित्यं देहसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।
त्रिसंवत्सरमात्रेण जरा-मरण-वर्जितः ॥ २४ ॥

१—'शुण्ठ्या नस्यं करोति च' पाठोऽयं प्रतिभाति ।
२—मण्डलम् = अष्टचत्वारिंशद्दिवसपरिमितः कालः ।

पातालमधुगोक्षीर-नवनीतानुपानकैः ।
सेवयेच्छर्करायुक्तं तत्पथ्य-नियमं विना ॥ २५ ॥
सेवयेद् बुद्धिमान् मर्त्यो ब्रह्मकल्पं स जीवति ।
जगन्मोहननाम्नायं रसो लोकप्रकीर्तितः ॥ २६ ॥

मोती, हीरा, वैदूर्य, माणिक्य, पुखराज, गोमेद, नीलम, पन्ना, मूंगा, सुवर्णादि आठों धातुओं की भस्म, पारद भस्म इन सब को पृथक्-पृथक् समान भाग ग्रहण करें। इन सब द्रव्यों के चूर्ण का तीसवां भाग विषशुद्ध, कूठ, हरड़, बहेड़ा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, सुहागा, शुद्ध गन्धक, सुवर्णमाक्षिक भस्म, शुद्ध मैनशिल इन सब का चूर्ण पृथक्-पृथक् ग्रहण करें। पश्चात् सब को एक साथ मर्दन कर बांस की कूपी में अथवा काच की शीशी में रख लेवें।

वैद्य को चाहिये कि जगन्मोहन रस को एक सरसों की बराबर मात्रा में प्रयोग करें। इस रस को कफ के ज्वरों में भाङ्गरे के रस और गुड़ के साथ प्रयोग करें। पित्त ज्वरों में मैरेय (आसव विशेष) और शकर के साथ सेवन करें। वातज्वरों में नागरबेल (पान) के रस के साथ प्रयोग करें। एकाहिक और द्व्याहिक ज्वरों में भूमि आमला के रस के साथ प्रयोग करें। तिजारी में तथा चौथय्या ज्वर में बकरी के दूध के अनुपान के साथ सेवन करावें। सब प्रकार के विषम ज्वरों में नीम के पत्ते के रस के साथ सेवन करावें। अभिघात ज्वर में गोजिया का रस और शहद मिलाकर सेवन करावें। दोष ज्वर में अड़ूसा और सहजने के रस के साथ सेवन करावें। सब प्रकार के सन्निपात ज्वरों में अदरख के रस के साथ सेवन करावें। इस प्रकार के अनुपानों के साथ इस रस को ज्वरों में प्रयोग करें। सर्वाङ्ग वात में आक की जड़ के रस के साथ सेवन करावें। धनुर्वात में संभालू की जड़ के रस के साथ तथा पक्षाघातमें हरड़ के काथ के साथ सेवन करावें, सुप्तवात में तथा शेष वातों में गोमूत्र के साथ सेवन करावें। वृश्चिक वात में काकड़ासिङ्गी और

केसर के साथ सेवन करावें और जितने भी वातरोग हैं सबमें गरम पानी के साथ सेवन करावें। जिस-जिस रोग में जो अनुपान अनुकूल हो उसी के साथ सेवन करावें। यदि सब शरीर में श्वेत कुष्ठ हो गया हो तो नील तथा भांगरे के रस के साथ सेवन करावें। और भी जितने कुष्ठ हैं उन सब में शहद के साथ सेवन करावें। जलोदर में दन्ती की जड़ के रस के साथ सेवन करावें। महाजलोदर में चिरायता और थूहर से सिद्ध किये तेल के अनुपान के साथ सेवन करावें। और दूसरे जो उदर रोग हैं उनमें कोयल के साथ सेवन करावें। शर्करा युक्त अश्मरी में पाषाणभेद के रस के साथ सेवन करावें। बहुमूत्र में कटेरी की जड़ के काथ के साथ सेवन करावें, मधुमेह, शुक्रमेह तथा इक्षुमेह में (गोखरू के रस) के साथ सेवन करावें, रक्तमेह में गाय के दूध अथवा मक्खन के साथ सेवन करावें। तक्रमेह में गोमूत्र अथवा गूलर के रस के साथ सेवन करावें और दूसरे प्रमेहों में तिलपर्णी के रस के साथ सेवन करावें। बवासीर में कठगूलर और गुड़ के साथ सेवन करावें। शूलों में गोरखमुण्डी और अदरख के रस के साथ सेवन करावें। सब प्रकार के गुल्मों में कुबेराक्षी तथा इमली के क्षार के जल के साथ सेवन करावें। पाण्डु रोग में चित्रक के चूर्ण के साथ तथा क्षयजन्य शोथ में गाय के दूध के साथ सेवन करावें। क्षयरोग में गाय का घृत और केले के रस के साथ सेवन करावें। कामला में हलदी के चूर्णयुक्त कटेरी के रस के साथ सेवन करें। शिरःशूल आदि में सोंठ के चूर्ण के साथ इसका नस्य देवें। सब प्रकार के व्रणों के ऊपर गाय के घी में मिला कर इसका लेप करें। तुलसी के रस के साथ इसे सेवन कराने से सब प्रकार की उलटियों को नष्ट करता है। इस रस को दारुण रोगों में अड़तालीस दिन सेवन करावें तथा साधारण रोगों में चौबीस दिन सेवन करावें। महारोगों में इस औषधि का यदि प्रयोग करना हो तो दो सरसों की बराबर मात्रा में देवें। इसको तीन मास तक निरन्तर सेवन कराने से निश्चय ही देह-सिद्धि होती है। इसके तीन वर्ष के

प्रयोग से मनुष्य बुढ़ापा और मृत्यु इनसे रहित हो जाता है। इस रस को पातालगरुड़ी का रस, शहद, गाय का दूध, मक्खन और शकर इनके अनुपान के साथ पथ्य और नियम के विना भी सेवन करावें। इसको सेवन करने वाला मनुष्य ब्रह्मा के एक कल्प तक जीवित रहता है। यह जगन्मोहन नाम का रस लोक में विख्यात है॥ १—२६

इति जगन्मोहरसः।

अथ षण्मुखरसः—

नागवङ्गाभ्रकाणां च शुल्बलोहद्वयोरपि।
सिन्दूराणि[1] च पञ्चानां रससिन्दूरमेव च॥ २७॥
एतानि समभागानि एकीकृत्य विचक्षणः।
नित्यं तत्कृष्ण-कदली-फल-युक्तं तु लेपयेत्॥ २८॥
मधुलेष्टान्नपानानि[2] भुञ्जयेद् बहुशो मुहुः।
संवत्सरार्ध-मात्रेण जरा-मरणवर्जितः॥ २९॥
दिव्यदेहो भवेन्मर्त्यः सर्वव्याधि-विनाशनः।
कृष्णगोक्षीरसंयुक्तं क्षयाणां च प्रयोजयेत्॥ ३०॥
मातुलुङ्गफलाम्लेन सेवयेदर्धमण्डलम्।
श्वासकासादिहृद्रोग-पीनसान् प्रविशन्ति ये॥ ३१॥
अस्य प्रयोगचातुर्यादनुपान-विशेषतः।
सर्वे गदा विनश्यन्ति तूर्णमेव न संशयः॥ ३२॥
षण्मुखः कथितः सोऽयं रसेन्द्रो देवदुर्लभः॥ ३३॥

१—सिन्दूराणि = सिन्दूरतुल्यभस्मानि।
२—'मधुरेष्टान्नपानानि भुञ्जीत'-पाठोऽयं प्रतिभाति।

नागभस्म, वङ्गभस्म अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, लोहभस्म ये पांचों सिन्दूर के समानवर्ण वाली भस्म तथा रससिन्दूर इनको समान भाग ग्रहण करें। पश्चात् सबको एक साथ मर्दन करें। इस रस को अग्नि और बल के अनुसार काले रंग के केले के फल के साथ सेवन करें। इस रस के ऊपर मधुर तथा मनोवाञ्छित पदार्थों को खूब सेवन करें। इस रस को छः मास तक निरन्तर सेवन करने से मनुष्य बुढ़ापा और मृत्यु इनसे रहित हो जाता है। वह मनुष्य दिव्य शरीर वाला हो जाता है। यह रस सब प्रकार की व्याधियों को दूर करने वाला है। इस रस को क्षयरोग वाले मनुष्यों को काली गाय के दूध के साथ सेवन करावें। इसको विजौरा नीबू के रस के साथ चौबीस दिन सेवन करने से श्वास, कास, हृद्रोग, पीनस आदि दूर होते हैं। अनुपान विशेष के साथ इसके प्रयोग की चतुरता के कारण सब प्रकार के रोग इसके सेवन से शीघ्र दूर होते हैं इसमें संशय नहीं है। यह षण्मुख नाम का रस कहा है। यह रस देवताओं के लिये भी दुर्लभ है॥ २७—३३॥

अथ सार्वभौमरसः

हेमवज्राभ्रकाणां च भस्मत्रयंसमांशकम्।
भूनागसत्त्वभस्मापि[1] तत्समं निक्षिपेद् बुधः॥ ३४॥
कृष्णचित्र-रसेनैव मर्दयेच्च दिनत्रयम्।
अमृतस्य कषायेण कुमारी-स्वरसेन च॥ ३५॥
त्रिकटु त्रिफलानां च स्वरसेन विभावयेत्।

१—भूनागस्य सत्त्वपातनविधिमाह—
ताम्रभूभवभूनागान् गृहीत्वा यत्नतः पुमान्।
गुडगुग्गुलुलाक्षोर्णामत्स्यपिण्याकटंकणैः॥
दृढमेतैश्च संयोज्य मर्दयित्वा घर्मतसुखम्।
मुञ्चति ताम्रवत्सत्त्वं तद्वत्पक्षोऽपि बर्हिणाम्॥

द्राक्षाफलान्वितं नित्यं वल्लमात्रं प्रयोजयेत् ।
सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो वज्रदेहो भवेन्नरः ॥ ३६ ॥
त्रिवत्सर-प्रयोगेण जीवेच्चन्द्रार्कतारकम् ।
सर्वेषामायुधानां च विषाणां च निवारणम् ॥ ३७ ॥
सर्वशत्रून्-जयत्याशु भुवि सङ्कीर्तितो भवेत् ।
सार्वभौमरसो ह्येष सर्वराजमनोहरः ॥ ३८ ॥

सुवर्ण, हीरा और अभ्रक इन तीनों की भस्म समान भाग ग्रहण करें । इनके बराबर ही केचुए के सत्त्व की भस्म मिलावें फिर सबको एक साथ काले चित्रक के रस में तीन दिन मर्दन करें । पश्चात् गिलोय के क्वाथ में, घृतकुमारी के रस में, त्रिकुटा और त्रिफला इनके क्वाथ से भावित करें । इस रस को तीन रत्ती की मात्रा में दाख के साथ सेवन करावें । इसके सेवन से मनुष्य सब रोगों से मुक्त हो कर वज्र के समान शरीर वाला हो जाता है । इसके तीन वर्ष प्रयोग करने से मनुष्य जब तक सूर्य और चन्द्रमा का अस्तित्व है तब तक जीवित रहता है । यह सब प्रकार के आयुध (शस्त्रों के घाव) तथा विषों को नष्ट करने वाला है । सब शत्रुओं से शीघ्र ही विजय दिलाता है पृथ्वी पर यह प्रसिद्ध है । यह सार्वभौम नामक रस सब रसों में श्रेष्ठ तथा मनोहर है ॥ ३४-३८ ॥

अथ नवग्रहरसः

रसं च गन्धकं चैव मौक्तिकं च मनश्शिला ।
कुष्ठं च शङ्खभस्मापि टङ्कणं माक्षिकं तथा ॥ ३९ ॥
नेपालं च समांशानि निक्षिपेत्खल्वमध्यतः ।
मर्दयित्वा शनैः सम्यक् त्रिफला-स्वरसेन च ॥ ४० ॥
निम्बदाडिममौर्व्यार्चि-[1] वासा-पत्ररसैः पृथक् ।

१—पद्यार्धमिदं विस्पष्टतयार्थं न व्यनक्ति ।

काचकुप्यां विनिक्षिप्य वालुकायन्त्रमध्यतः ॥ ४१ ॥
पचेन्मृत्तिक-योगेन सप्तवारं विलेपयेत् ।
पक्वा सप्तदिनान्येतत् स्वाङ्ग-शीतलमुद्धरेत् ॥ ४२ ॥
गुञ्जामात्रं प्रयुञ्जीत नागवल्या दलान्वितम् ।
सर्वे ज्वरा विनश्यन्ति शीतिका-विषमादयः ॥ ४३ ॥
मरिचं मागधी शुण्ठी पित्तवातकफोत्तरे ।
कूष्माण्डफलनीरेण तापज्वर-निवारणम् ॥ ४४ ॥
अजाक्षीरेण संयुक्तं पित्तज्वर-निवारणम् ।
तिलकाण्ड-भस्म-नीरेण पञ्चगुल्मनिवारणम् ॥ ४५ ॥
सैन्धवेन समायुक्त-मष्टशूल-निवारणम् ।
भृङ्गस्वरस-संयुक्तं श्लेष्मरोग-निवारणम् ॥ ४६ ॥
तत्तत्साम्यानुपानैश्च सर्वरोगहरं भवेत् ।
नवग्रहरसो नाम्ना प्रसिद्धो भुवि राजते ॥ ४७ ॥

शुद्धपारद, शुद्धगन्धक, मोती, मैनशिल, कूठ, शंखभस्म, सुहागा, सुवर्णमाक्षिक, ताम्रभस्म इन सबको समानभाग लेकर खरल में रक्खें फिर इसको धीरे २ त्रिफला के स्वरस में मर्दन करे । नीम, अनार, मूर्वा, अड़ूसा इनके पत्तों के रस से पृथक् एक-एक दिन मर्दन करें पश्चात् काचकूपी में रखकर बालुका यन्त्र में पकावें । शीशी के ऊपर सातकपरमिट्टी करके सात दिन तक बालुका-यन्त्र में पाक करें । स्वाङ्ग-शीतल होने पर निकालें, । इस रस को एक रत्ती की मात्रा में नागरवेल पान के साथ सेवन करावें । इसके सेवन से शीतज्वर विषमज्वर आदि सब प्रकार के ज्वर दूर होते हैं । पित्त, वात और कफ इनसे उत्पन्न ज्वर में काली मरिच, पीपल तथा सोंठ के चूर्ण के अनुपान के साथ सेवन करावें । यह रस पेठे के रस के अनुपान के

साथ सेवन करने से तापयुक्त ज्वर को दूर करता है। बकरी के दूध के साथ देने से पित्तज्वर को दूर करता है। तिलकाण्ड की भस्म के जल के साथ देने से पांचों प्रकार के गुल्म को दूर करता है। सेंधा नमक के साथ सेवन कराने से आठों प्रकार के शूल को नष्ट करता है। भागरे के स्वरस के साथ सेवन कराने से कफ के रोगों को दूर करता है। जिस जिस रोग को जो अनुपान हितकारी है उसीके साथ सेवन कराने से रोग को दूर करता है। इस प्रकार यह रस सब प्रकार के रोगों का नाश करने वाला है। यह नवग्रह नाम का रस पृथ्वी पर प्रसिद्ध है ॥३९–४७॥

इति नवग्रहरसः।

अथ लोकोत्तरो रसः

सूतगन्धकनेपालं दन्तिबीजानि टङ्कणम्।
एरण्डतुरण्डीबीजानि राजवृक्षोऽभया त्रिवृत् ॥ ४८ ॥
पलाशबीजान्येकैकवृद्ध्या भागोत्तरेण च।
स्नुहीक्षीरेण संयुक्तं मर्दयेत्त्रिदिनं तथा ॥ ४९ ॥
नारिकेलफले स्थाप्य महागाढातपे क्षिपेत्।
तत्तैलं जायते क्षिप्रं गृहीत्वा नाभिमध्यतः ॥ ५० ॥
अणुमात्रविलेपेन विरेकं कुरुते क्षणात्।
घटिका-पादमात्रेण दशवारं विरेचयेत् ॥ ५१ ॥
सुशीतलेन तोयेन शीघ्रं प्रक्षालयेत्ततः।
शरीरे गन्धमालिप्य माहिषदधि-संयुतम् ॥ ५२ ॥
राजान्नं योजयेदम्लं तैलं निद्रां विवर्जयेत्।
लोकोत्तररसो ह्येष सर्वरोगान्तकः स्मृतः ॥ ५३ ॥

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, जयपाल शुद्ध, सुहागा, अरण्डी के बीज, बिम्बाफल के बीज, अमलतास, हरड़, निशोथ, ढाकके बीज इन सब द्रव्यों को क्रमानुसार एक एक भाग बढ़ाकर लेवें—जैसे पारद एक भाग, गन्धक दो भाग, ताम्र भस्म तीन भाग आदि। फिर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर तत्पश्चात् शेष द्रव्यों को मिला कर मर्दन करें फिर उसे तीन दिन तक आकके दूध से मर्दन करें पश्चात् उसे नारियल में रखकर तीव्रधूप में रखदेवें ऐसा करने से उसमें से तेल निकल आवेगा। इस तेल को थोड़ा सा लेकर नाभि के मध्य में लेप करें। इसके थोड़े से लेप करने से मनुष्य को शीघ्र दस्त होते हैं चौथाई घड़ी में दश दस्त हो जाते हैं। पश्चात् शीघ्र ही गुदा को धो देवें फिर शरीर में सुगन्धित पदार्थों का लेप करें, भैंस की दही के साथ चावल का सेवन करें। अम्ल पदार्थ, तेल तथा निद्रा इनका परित्याग करें। यह लोकोत्तर रस सब रोगों को नष्ट करने वाला है ॥ ४८—५३

इति लोकोत्तरो रसः।

अथ ग्रहणीवेलारसः—

पारदाभ्रकसिन्दूरं विषं जातीफलं तथा।
कुटजस्य च बीजानि धूर्तबीजानि टङ्कणम् ॥ ५४ ॥
व्योषं मुक्ताभया-चूतफलबीजं तथैव च।
बिल्वमातङ्गबीजानि दाडिमारलुबीजकम् ॥ ५५ ॥
एतानि समभागानि निक्षिपेत्खल्वमध्यतः।
कपित्थ-स्वरसेनैव मर्दयेच्छ्लक्ष्णचूर्णकम् ॥ ५६ ॥
गुञ्जामात्रप्रमाणेन वटिकाः कारयेद्भिषक्।
एवं कुटजमूलत्वग्रसेन च प्रयोजयेत् ॥ ५७ ॥

आमग्रहणिकां हत्वा कुरुते दीपनं परम् ।
मधुना दधिना वापि रक्तग्रहणिकां जयेत् ॥ ५८ ॥
शुण्ठीकषायसंयुक्तमतिसारं विनाशयेत् ।
सविशेषानुपानैश्च ग्रहणीनां प्रयोजयेत् ॥ ५९ ॥
कुटजानां च मूलानि बिल्व-दाडिममूलकम् ।
कपित्थचूतमूलानि कुमुदानां तथैव च ॥ ६० ॥
कमलानां च कन्दानां चन्दनं खदिरं तथा ।
पाठोदुम्बरमूलानि सुगन्धि ह्रस्वमूलकम् ॥ ६१ ॥
एतानि समभागानि घटे क्षिप्त्वान्ध्रयेत्ततः ।
महागजपुटेनैव तैलमुद्धृत्य भूतले ॥ ६२ ॥
विजयासिल्हकलिङ्गि-बीजतैलं तथैव च ।
एतत्तैलत्रयं तुल्यं तैलार्धं सूतभस्म च ॥ ६३ ॥
दत्त्वार्धमेला-कर्पूरमेकीकृत्य भिषग्वरः ।
नाभौ हस्ततले चाथ गुदे पादतलेऽथवा ॥ ६४ ॥
गुञ्जार्धमात्रलेपेन प्रवाह-ग्रहणीकुलम् ।
निवारयति लेपेन समस्तो बृंहणं तथा ॥ ६५ ॥
रक्तामग्रहणीनां च दधिना सम्प्रयोजयेत् ।
रक्तग्रहणि-भेदांश्च नाशयेदतिमात्रतः ॥ ६६ ॥
प्रमाणादधिकं योऽपि प्रयोगं कुरुते भिषक् ।
मलपिष्टं भवेदेक-मानं च न विरेचयेत् ॥ ६७ ॥
तथा लोकोत्तररस-प्रयोगं कुरुते भिषक् ।
मलं भेदयति क्षिप्रं मालाटङ्कविटङ्कवत् ॥ ६८ ॥

शृङ्गवेराम्भसा युक्तमामशूलं विनाशयेत् ।
कथितो ग्रहणीवेलारसोऽयं लोकविश्रुतः ॥ ६९ ॥

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, शुद्ध विष, जायफल, इन्द्रजौ, धतूरे-के बीज शुद्ध, सुहागा, सोंठ, मिरच, पीपल, मोती, हरड़, आमके फल की मिंगी, बेलगिरी, पीपल, अनारदाना, अरलू के बीज इन सब द्रव्यों को समान भाग लेकर खरल में रक्खें, पश्चात् कैथ के रस में खूब मर्दन करें फिर इस रस की एक एक रत्ती की बटी बना लेवें। वैद्य को चाहिये कि इन्हें कुड़े की जड़के रस के अनुपान के साथ सेवन करावें। यह आमजन्य ग्रहणी को दूर कर अग्नि को दीपन करने के लिये अत्यन्त श्रेष्ठ है। शहद के अनुपान से अथवा दही के अनुपान से रक्त की ग्रहणी को नष्ट करता है। सोंठ के काढे के साथ सेवन करने से अतिसार को दूर करता है। विशेष विशेष अनुपानों के साथ विभिन्न प्रकार की ग्रहणी में इसे प्रयोग करें। कुड़ा की जड़, बेल, अनार की जड़, कैथ, आम की जड़, कमल की जड़, कमलकन्द, चन्दन, खैर, पाठा, गूलर की जड़, सुगन्धवाला, इन सबको समान भाग लेकर घड़े में भर देवें नीचे इसमें छिद्रकर देवें ऊपर से घड़े का मुँह बन्द कर देवें पश्चात् उनको गजपुट में पाक करें, भाण्ड के तेल में एक पात्र तैल के संचय के लिये रख देवें फिर भाँग के बीजों का तेल सिल्हक का तेल तथा शिवलिङ्गी का तेल इन तीनों तेलों को समान भाग ग्रहण करें। तैलों से आधी पारद की भस्म ग्रहण करें। कपूर और इलायची भी आधे आधे भाग ग्रहण करें पश्चात् सबको एकत्रित कर मर्दन करें। इसका नाभि, हस्ततल अथवा पादतल में आधी रत्ती की मात्रा में लेप करने से दारुण ग्रहणी का प्रवाह नष्ट होता है। सब प्रकार की ग्रहणी का यह लेप नाश करने वाला है साथ ही बृंहण भी है इसको रक्त और आम की ग्रहणी में दही के साथ सेवन करें। रक्त की ग्रहणी अत्यन्त शीघ्र नष्ट करता है जो व्यक्ति प्रभाव से अधिक प्रयोग करता है उसका मल बद्ध हो जाता है उसे

रेचन नहीं होता है। फिर उसके ऊपर यदि लोकेश्वर रस का प्रयोग किया जावे तो वह शीघ्र मलका भेदन करके दस्त लाता है, मल को फाड़ देता है। अदरख के रस के साथ सेवन करने से आमशूल को दूर करता है। यह ग्रहणीवेला नामक रस के नाम से लोक में विख्यात है॥ ५४-६९॥

इति ग्रहणीवेलारसः।

अथ विश्वम्भरो रसः—

भूशिग्रुवज्रस्नुह्यर्क-कुबेराद्यग्निमूलकाः।
भूधात्री-विषभूगुञ्जा-करञ्जानां समूलकाः॥ ७०॥
एतेषां भूपुटे तैलं संङ्ग्रहेत विचक्षणः।
सूतशुल्बद्वयोर्भस्म हरितालं च गन्धकम्॥ ७१॥
त्रिकटु त्रिफला हिङ्गु माक्षिकं च समांशकम्।
नागवङ्गद्वयोर्भस्म विषं हिङ्गुलमेव च॥ ७२॥
एतानि पट्टचूर्णानि तेन तैलेन मेलयेत्।
नागवल्लीरसेनाथ वल्लमात्रं प्रयोजयेत्॥ ७३॥
तथार्द्रकं रसोपेतं सैन्धवेन प्रयोजयेत्।
अष्टशूलानि गुल्मानि नाशयेदेकमात्रया॥ ७४॥
वातान् कुष्ठान् पित्तरोगानपस्मारानेकशः।
पीनसादिश्लेष्मरोगान् ग्रन्थिरोगांश्च दारुणान्॥७५॥
अश्मरीमूत्रकृच्छ्रादि-प्रमेहान् विषमज्वरान्।
विनाशयेद् गदान् सर्वानन्यानपि निहन्ति च।
विश्वम्भररसो नाम्ना सर्वरोगहरः स्मृतः॥ ७६॥

कड़वा सहजना, सेंहुण्ड, स्नुही, आक, कुबेराक्षी, चित्रक, मूली, भूमि आमला, विष, गुञ्जा, करञ्ज इनको मूल सहित ग्रहण करें। इन सब द्रव्यों को एक भाण्ड में भर देवें, पश्चात् भाण्ड के तल में छोटे २ छिद्र कर देवें। फिर भाण्ड को एक गढे में रख देवें। छिद्रों के नीचे छोटा पात्र जिसमें तेल एकत्रित होता रहे, भाण्ड के ऊपर पुट लगावें, नीचे के पात्र में जो तेल या द्रव इकट्ठा हो उसे रख लेवें। पश्चात् रससिन्दूर, ताम्रभस्म, हरिताल भस्म, गन्धक, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आमला, हींग, सुवर्णमाक्षिक इनको समानभाग ग्रहण करें। नागभस्म, वङ्गभस्म, विष और हिङ्गुल इनको भी पूर्वोक्त द्रव्यों के समान ग्रहण करें। पश्चात् सबका चूर्ण कर पूर्वोक्त तेल के साथ मर्दन करें। इस रस को नागरबेल पानों के रस के साथ तीन रत्ती की मात्रा में प्रयोग करें अथवा अदरख का रस और सेंधे नमक के साथ सेवन करें। यह रस एक मात्रा के सेवन से आठों प्रकार के शूल और गुल्म इनको दूर करता है। वातरोग, कुष्ठ रोग, पित्त-विकार तथा अनेक प्रकार के अपस्मार, पीनस आदि कफ के विकार, दारुण ग्रन्थि रोग, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह आदि विकार, विषमज्वर को नष्ट करता है। और भी सब रोगों को दूर करता है। यह विश्वम्भर नामक रस सब रोगों को हरने वाला है॥ ७०-७६॥

इति विश्वम्भररसः।

अथ पञ्चबाणरसः—

गन्धकाभ्रक-धुत्तूर-गरलानां चतुष्टयात्॥७७॥
तैलमुद्धृत्य तेनैव दोलायन्त्रे विपाचयेत्।
गुटिका[1] तुलमात्रस्य तैलं प्रस्थप्रमाणकम्॥७८॥

१—पद्यार्धमिदं विस्पष्टतयार्थं न व्यनक्ति।

तैलं निश्शेषमापच्य अजगोखरवाजिनाम् ।
मूत्रैश्च पूर्ववत्पच्यान्मातुलुङ्गफले क्षिपेत् ॥७९॥
तद्द्वारमंघ्रितं कृत्वा [1]पुटयेत्खल्वमात्रकम् ।
पश्चादुद्धृत्य तद्भस्म सर्षपं विनियोजयेत् ॥८०॥
सर्षपद्वय-मात्रं तु ब्रह्मरन्ध्रे विलेपयेत् ।
त्रिदोषाणि च सर्वाणि सर्वसर्पविषाणि च ॥८१॥
भूतप्रेतपिशाचादि ग्रहण्यादि शिरोगदाः ।
कर्णाक्षिरोगानन्यांश्च नाशयेत्क्षणमात्रतः ॥८२॥
पादाङ्गुष्ठेन[2] लेपेन सर्ववातान्विनाशयेत् ।
सूचीमुखप्रमाणान्तु नागवल्लीदलान्वितम् ॥८३॥
भक्षयेच्छूलजालानि गुल्मानि विविधानि च ।
कुक्षिरोगानशेषांश्च नाशयेन्नात्र संशयः ॥८४॥
महिषीदधिसंयुक्तं पाण्डुजालं विनाशयेत् ।
कदलीफलसंयुक्तं भक्षयेच्च पिबेत्पयः ॥८५॥
सर्वाङ्गे लेपयेद् गन्धं कर्पूरेण च संयुतम् ।
मदनोद्रेक-संयुक्तो महामत्तगजेन्द्रवत् ॥८६॥
खरस्य[3] दण्डवद् भूत्वा स्वदण्डमनिवारितम् ।
निरन्तरं महागाढ-रतिं कुर्वन्मदोद्यतः ॥८७॥

१—'खल्वमात्रकम्' इत्यत्र 'स्वल्पमात्रकम्' इति पाठः सुष्ठु प्रतिभाति ।
२—'पादाङ्गुष्ठेन लेपेन' इत्यत्र 'पादाङ्गुष्ठप्रलेपेन' इति पाठः सुष्ठु प्रतिभाति ।
३—अस्य पादस्यार्थो न विज्ञायते ।

यामत्रये शतं स्त्रीणां तथा तृप्तिं विना जयेत् ।
मुहुर्मुहुः पिबेद् गव्यं शर्करासंयुतं पयः ॥८८॥
नारिकेलोदकं चैव पिबेच्छैत्योपचारकम् ।
कर्पूरान्विततांबूलं कुरुते सत्ववान्नरः ॥८९॥
वृद्धिं च स्तम्भनं चैव कुरुते च निरन्तरम् ।
जम्बीरफलबीजानां चूर्णमुष्णेन वारिणा ॥९०॥
पिबेत्तत्क्षणमात्रेण तदुद्रेकं विनाशयेत् ।
सर्वेषामपि रोगाणामनुपान-विशेषतः ॥९१॥
तदौषध-प्रयोगेऽस्मिन्नप्रमत्तः प्रयोजयेत् ।
पञ्चबाण-रसख्यातः सर्वलोकोपकारकः ॥९२॥

गन्धक शुद्ध, अभ्रक, भस्म, धतूर, बिष इन चारों को समान भाग लेकर एक तोले की गुटिका बना लेवें पश्चात् उसे एक प्रस्थ तेल में दोलायन्त्र द्वारा तब तक पकावें जब तक कि सब तेल न जल, जावे, फिर, उसे बकरी, गाय, गधा, घोड़ा इनके मूत्र में पकावें पश्चात् उसे बिजौरा नीबू के फल में रख देवें, उसके मुख को बन्द कर उसे थोड़ी देर पकावें । पश्चात् उसकी भस्म को निकाल कर एक सरसों की बराबर प्रयोग करें, इसको दो सरसों की बराबर मात्रा में ब्रह्मरन्ध्र में लगादेवें । इसके प्रयोग से सब प्रकार के संनिपात तथा सब प्रकार के सर्पों के विष दूर होते हैं । भूत, प्रेत पिशाच आदि ग्रह तथा ग्रहणी, शिरोरोग, कर्ण रोग, नेत्र रोग तथा अन्य रोग शीघ्र ही इस के प्रयोग से नष्ट होते हैं । पैर के अंगूठे में यदि इस तैल का लेप कर दिया जावे तो सब प्रकार के वातरोगों को दूर करता है । एक सुई पर जितना लग जावे उतने की पान पर लकीर खींचकर पान को खाने से अनेकों प्रकार के शूल तथा गुल्म

नष्ट होते हैं। सब प्रकार के पेट के रोग नष्ट होते हैं इसमें संशय नहीं है। भैंस की दही के साथ सेवन करने से पाण्डु रोग को नष्ट करता है इसमें केले के फल के साथ दूध का सेवन करें। सब शरीर में गन्धक तथा कपूर का लेप करें ऐसा करने से मनुष्य मतवाले हाथी की तरह काम से व्याकुल हो जाता है। इसको सेबन करने वाला निरन्तर मैथन करता रहता है तीन प्रहर में सौ स्त्रियों से भोग करता है इतने पर स्वयं तृप्त नहीं होता। इसके पश्चात् गायका दूध शकर मिलाकर बार बार पान करें। नारियल का पानी शीतल उपचार के लिये सेवन करें। पानमें कपूर रखकर सेवन करने से मनुष्य सत्त्ववान् होता है। इस से मनुष्य की स्तम्भन-शक्ति बहुत बढ़ जाती है यदि उसको कम करना हो तो जम्भीरी नीबू के फल की मज्जा गरम जल के साथ पान करें। इसके सेवन से शींघ्र ही काम का वेग शान्त होता है। सब प्रकार के रोगों में अनुपान भेद से बिना किसी शंका के प्रयोग करें। यह पञ्चबाण रस सम्पूर्ण जगत् का उपकार करने वाला है॥ ७७-९२ ॥

अथ ब्रह्मास्त्ररसः—

कृष्णाचित्रकमूलानि कृष्णामलकमेव च।
कृष्णनिर्गुण्डिकामूलं कृष्णश्रीतुलसीदलम् ॥९३॥
एतत्सर्वं समं कृत्वा पटुचूर्णं च कारयेत्।
कृष्णवर्णं सूतभस्म लोहवङ्गादि[1] - भस्मकम् ॥९४॥
चतुर्भस्मसमं कृत्वा तदर्धं [2]कृष्णपारदम्।
तदेकांशं गन्धकं च तालकं च मनःशिला ॥९५॥

१—'वङ्गादि' इत्यत्र 'वङ्गाहि' इति पाठः शुद्धो भाति।

२—'शुद्धपारदम्' पाठोऽयं प्रतिभाति।

नेपालं त्रिफला व्योषं रामठं माक्षिकं तथा।
एतत्सर्वं समं पूर्व-मूलिकाचूर्णमेव च ॥९६॥
तत्सर्वं निक्षिपेत्खल्वे कृष्णोन्मत्तरसेन च।
भृङ्गनिम्बार्द्रक-रसैर्जम्बीरस्वरसेन च ॥९७॥
मर्दयेद्दशवाराणि सम्यगञ्जनतुल्यकम्।
.... वटकान्कारयेद्भिषक् ॥९८॥

एकमुष्णाम्बुना युक्तं वातानां च प्रयोजयेत्।
नागवल्ल्यमृतेन्द्राणां रसैर्युक्तं प्रयोजयेत् ॥९९॥
अर्धमण्डलमात्रेण वातजालं विनश्यति।
सप्तवारं त्रिवारं वा वातानन्यान्विनाशयेत् ॥१००॥
भृङ्गीरसेन मधुना गोमूत्रेणाथवोभयात्।
ईदृग्विधानुपानैश्च कुष्ठानाश्च प्रयोजयेत् ॥१०१॥
सर्वे कुष्ठा विनश्यन्ति श्वेतकुष्ठं विशेषतः।
षण्मासं सेवयन्नित्यं कृष्णं सर्वं पुनर्भवेत् ॥१०२॥

पुनः षण्माससेवायां रक्तवर्णं भवेद्वपुः।
त्रिमासं सेवयेत्पश्चात्कृष्णं भवति तद्वपुः ॥१०३॥
देहसिद्धिर्भवेत्तस्य जीवेच्चन्द्रार्कतारकम्।
ज्वरादिसर्वरोगाणामनुपान - विशेषतः ॥१०४॥
प्रयोजयेत्पलायन्ते सर्वरोगपतत्रिणः।
ब्रह्मास्त्ररस इत्युक्तो विश्वामित्रेण निर्मितः ॥१०५॥

काली चित्रक की जड़, काले आमले, काली निर्गुण्डी की जड़, काली तुलसी के पत्ते, इन सबको समान भाग लेकर अत्यन्त महीन

चूर्ण कर लेवें पश्चात् पारद की कृष्णभस्म, लोह, वङ्ग तथा नाग इन तीनों की भस्म इन चारों भस्मों को समानभाग लेवें इनका आधा भाग शुद्ध पारद तथा चौथाई गन्धक, हरिताल तथा मैनशिल ग्रहण करें फिर ताम्रभस्म, त्रिफला, त्रिकुटा, हींग, सुवर्णमाक्षिक इन सबको भस्मों के समान भाग लेकर चूर्ण में मिला देवें पश्चात् सबको खरल में रखकर काले धतूरे के रस में मर्दन करें। फिर भांगरा, नीम, अदरख, जम्बीरी नीबू इनके रस से अँजन के समान अत्यन्त सूक्ष्म मर्दन करें। पश्चात् (दो-दो रत्ती) की वटी बना लेवें। इनमें से एक गोली गर्म जल के साथ वातरोगों में प्रयोग करें अथवा नागरवेल, गिलोय तथा लहसुन के रस के साथ प्रयोग करें। यह चौबीस दिनों में महावात रोगों को दूर करता है। सात दिन अथवा तीन दिन में साधारण जो वातरोग है उन्हें नष्ट करता है। भांगरे का रस और शहद के साथ अथवा गोमूत्र के साथ अथवा दोनों के साथ कुष्ठ रोग में सेवन करावें। इसके सेवन से सब प्रकार के कुष्ठ दूर होते हैं विशेष करके श्वेत कुष्ठ दूर होता है। इसको छः मासतक निरन्तर सेवन करने से शरीर काले रंग का हो जाता है। फिर छः मास तक सेवन करने से शरीर रक्त वर्ण का हो जाता है फिर तीन मास सेवन करने से उसका शरीर काला हो जाता है उसके देह की सिद्धि हो जाती है तथा चन्द्रमा और सूर्य का जब तक अस्तित्व है तब तक जीवित रहता है। ज्वरादि सब रोगों में अनुपान भेद के साथ सेवन कराने से सब रोग दूर होते हैं। यह ब्रह्मास्त्र रस स्वयं विश्वामित्र ने कहा है ॥ ९३-१०५ ॥

इति ब्रह्मास्त्ररसः ।

अथ महाकालानलरसः—

वराटं शङ्खमण्डूर-शुक्ति-मौक्तिकशुक्तयः ।
गोखुराश्वाजदन्ताश्च शशदन्ताश्च तत्खुरम् ॥१०६॥

मृगदन्ताश्वदन्ताश्च पुटयेदन्धयेत्ततः ।
तद्भस्मतुल्यममृतं व्योषं च रसभस्म च ॥१०७॥
वैक्रान्तकान्तशुल्बानां भस्मान्येतानि मेलयेत् ।
खल्वे निक्षिप्य शार्दूलमृगादीनां च [1] पैत्तिकैः ॥१०८॥
···मत्स्येन्द्रसर्पाणां पित्तैश्च बहु मर्दयेत् ।
करण्डके विनिक्षिप्य प्रमाणं सर्षपद्वयम् ॥१०९॥
नालिकेराम्भसा युक्तं त्रिदोषाणां प्रयोजयेत् ।
सद्योऽज्ञानतमो हन्ति तदाश्चर्यकरं भवेत् ॥११०॥
त्रिदोषराक्षसकुलं क्षिप्रमेव क्षयं नयेत् ।
तदा [2] महाविदाहं च क्षुत्पिपासाश्च कारयेत् ॥१११॥
दध्यन्नेक्षुरसाब्देन शर्करा-जल-शीतले ।
नालिकेरजले........................कपित्थफल-नीरकैः ॥११२॥
कदलीफलनीरेण................................... ।
तस्य शान्तिं प्रकुर्वीत देहे गन्धं विलेपयेत् ॥११३॥
श्वासकासादिहृद्रोग-पीनसान्वातजान्हरेत् ।
महाकालानलरसः ख्यातो लोकोपकारकः ॥११४॥

कौड़ी, शङ्ख, मण्डूर, सीप, मोती की सीप, गाय के खुर, घोड़े तथा बकरी के दांत, खरगोश के दांत तथा खुर, हिरन के दांत तथा घोड़े के दांत इन सब को समान भाग लेकर सम्पुट में बन्द कर गजपुट में फूंके। इस भस्म के समान भाग शुद्ध विष, त्रिकुटा का चूर्ण तथा रससिन्दूर मिलावें। वैक्रान्त, कान्त लोह, ताम्र इन तीनों की

१—'पित्तकैः' पाठोऽयं प्रतिभाति ।
२—'यदा' पाठोऽयं प्रतिभाति ।

भस्म भी पूर्वोक्त भस्मों के समान मिलावें पश्चात् सब को खरल में डाल कर शार्दूल (सिंह), मृग आदि के पित्तों से मर्दन करें। मछली, हाथी, सर्प इनके पित्त से खूब मर्दन करें। पश्चात् इस रस को कूपी में भर कर रखलेवें। इसको दो सरसों की बराबर प्रयोग करें। नरियल के जल के साथ त्रिदोष (सन्निपात) में प्रयोग करें। शीघ्र ही सन्निपात की अज्ञानता को दूर करता है। सन्निपात रूपी राक्षस के वंश को यह शीघ्र ही नष्ट करता है। इसके सेवन से बहुत दाह होता है भूख तथा प्यास बहुत लगती है इसलिये इसके सेवन के पश्चात् दही-भात, ईख का रस, शर्करा, युक्त शीतल जल, नारियल का पानी, कैंथ का रस, केले के फल का रस, सेवन करावें। उसकी शान्ति के लिए शरीर में गन्ध द्रव्यों का लेप करें। यह रस श्वास, कास, हृद्रोग, पीनस आदि रोग वात व्याधियाँ इनको दूर करता है। यह महाकालानलरस सम्पूर्ण जगत् का उपकार करने वाला है ॥ १०६-११४ ॥

इति महाकालानलरसः।

अथ आग्नेयरसः—

नागरं मागधीवेल्ल-वह्निपथ्या-सिताः समाः।
तदेकांशं सूतभस्म तेषां चूर्णेन योजयेत् ॥११५॥
प्रयोजयेन्निष्कमात्रं तरुणोष्णेन वारिणा।
अधिकं दीपनं कुर्वन्भोजनं कुरुते नरः ॥११६॥
गुल्मभेदा विनश्यन्ति सर्वान् सर्पान्विनाशयेत्।
वातशूलानि शूलानि श्वासकासान् हरेदपि ॥११७॥
आग्नेयरस इत्याख्यो गदान्दहति वह्निवत्।

सोंठ, पीपल, कालीमिरच, चित्रक, हरड़, मिसरी इन सबको समान भाग ग्रहण करें। इनमें से एक की बराबर ही रससिन्दूर मिला कर सबको एकसाथ मर्दन करें पश्चात् इसे तीन मासे की मात्रा में गुन गुने पानी के साथ प्रयोग करें। इस रस के ऊपर मनुष्य को अधिक दीपन भोजन करना चाहिये। इसके सेवन से सब प्रकार के गुल्म नष्ट होते हैं तथा सब प्रकार के सर्पों का विष दूर होता है। वातशूल, शूल, श्वास, कास ये सब दूर होते हैं। यह आग्नेय रस सब रोगों को अग्नि के समान दूर करता है ॥ ११५-११७ ॥

अथ संशोषणरसः—

बृहती पाटलामूलं बज्रदण्डीयचित्रकम् ॥११८॥
भूदन्ती [1]श्वेतगान्धारी खञ्जिगञ्जिष्टकाभवा[2]।
काकमाची द्विजिह्वा च गन्धर्वाह्वा द्विकण्टिका ॥११९॥
धात्रीद्वयं चित्रकं च श्वेतहिङ्गुसुरद्रुमौ।
पौष्करं तुम्बुरुं चैव व्योषं क्षारद्वयं तथा ॥१२०॥
तदेकोत्तरवृद्ध्या च द्रव्याण्येतानि योजयेत्।
कृत्वा चूर्णं तदेकांशं माक्षिकं लोहभस्म च ॥१२१॥
सूतभस्मामृतं चूर्णमेकीकृत्वाखिलं तथा।
गुञ्जामात्रप्रमाणं च प्रयोगं कुरुते भिषक् ॥१२२॥
जम्बीराम्लानुपानेन सेवयेन्मण्डलद्वयम्।
एवं प्रतिदिनं सूक्ष्मं शोषणं कुरुते भिषक् ॥१२३॥
संशोषणरसो नाम्ना प्रसिद्धः सर्वरोगहा।
मेरुमप्यणुमात्रं च कुरुते शङ्करोदितः ॥१२४॥

१—श्वेतगान्धारी = श्वेत पुनर्नवा।
२—पादस्यार्थो नावबुध्यते।

बड़ी कटेरी, पाढल की जड़, वज्रदण्डी, चित्रक, भूदन्ती, सफेद जवासा, मकोय, सर्पिणी, एरण्ड, आमला, भूमि आंबला, चित्रक, सफेद हींग, देवदारु, पोहकरमूल, नेपाली धनियाँ, सोंठ, मिरच, पीपल, जवाखार, सज्जीखार, इन सब द्रव्यों को क्रमशः एक एक भाग बढाकर लेवें फिर उसका चूर्ण कर लेवें पश्चात् चूर्ण का चतुर्थांश माक्षिकभस्म, लोह भस्म, शुद्ध विष तथा रससिन्दूर ग्रहण करें। पश्चात् सबको एकत्र मिलाकर रख लेवें। वैद्य को चाहिये कि इसको एक रत्ती की मात्रा में प्रयोग करें और जम्बीरी नीबू के रस के अनुपान से तीन मास और छः दिन तक निरन्तर सेवन करावे। इसके सेवन से नित्य प्रति धीरे शोषण होता है। यह संशोषण रस सबरोगों को हरने वाला है। पहाड़ जैसी चीज को भी बहुत छोटी बना देता है ॥११८-१२१॥

अथ रसमात्रा गुटिका—

हेमाभ्रकरसादीनां[1] सिन्दूरं च चतुष्टयम्।
कूष्माण्डफलनीरेण भावयेदेकविंशतिः ॥१२५॥
अश्वस्य मुखधानैश्च[2] अश्वगन्धारसेन च।
कृष्णगोक्षीर-रसकैर्हरिणी-क्षीरपूरकैः ॥१२६॥
बहुशो भावयेत्तस्य तवक्षीरी-चतुर्गुणम्।
द्राक्षा-खर्जूरमधुकमष्ट एलाच-चूर्णकम् ॥१२७॥
श्रीचन्दनाब्ज-ककोलजातिचूर्णं तथैव च।
क्षिप्त्वा पश्चान्नारिकेल-फलनीरेण भावयेत् ॥१२८॥

१—'रसादीनाम्' इत्यत्र 'रसाहीनाम्' इति शुद्धः पाठः।
२—पादस्यार्थो नावबुध्यते।

कृष्ण-गोक्षीरसंयुक्तं निष्कमात्रं तु सेवयेत्।
शर्करानवनीतेन सेवयेदेकमण्डलम् ॥१२९॥
क्षाराम्ललवणं तैलं वर्जयेत्स्त्रीषु सङ्गमम्।
मधुरेष्टान्न-पानानि भोजयेद्दिवसानयम् ॥१३०॥
अतिशुष्कस्य कायस्य पुष्टिं वितनुतेऽपि च।
स्त्रीणां च पुरुषाणां च कुरुते कायवर्द्धनम् ॥ १३१ ॥
आयुष्करी वश्यकरी सत्त्व-सन्तानकारिणी।
रसमात्रेति विख्याता नाम्ना लोके महीयते ॥१३२॥

सुवर्ण, अभ्रक, पारद, नाग इनचारों की भस्म समान भाग लेकर पेठे के फल के रस में इक्कीस दिन तक भावित करें। फिर उसे अश्व-गन्ध के रस से कालीगाय के दूध से, हिरनी के दूध से अनेक वार (इक्कीसवार) भावित करें पश्चात् इस रससे चौगुना तवाखीर का चूर्ण मिलावें तथा दाख, खजूर मुलहठी, छोटी इलायची, बहेडा, सफेद चन्दन, कमल, कंकोल, जावित्री इनका चूर्ण भी पूर्वोक्त चूर्ण की बराबर मिलावें पश्चात् उसे खरल में रख कर नारियल के फल के रस से भावित करें इस रस को काली गाय के दूध के साथ तीन मासे की मात्रा में सेवन करावें। अनुपान के लिए शकर और मक्खन ग्रहण करें तथा अड़तालीस दिन तक सेवन करावें। इस रस के सेवन करने पर क्षार, अम्लरस, नमक, तेल, स्त्रीप्रसङ्ग इन कामों का परित्याग करें। मधुर तथा इच्छित पदार्थों का सेवन दिन में खूब करें। इस रस के सेवन से शरीर जिस का अत्यन्त सूख गया हो ऐसे मनुष्य का शरीर पुष्टि को प्राप्त होता है। स्त्री तथा पुरुषों का शरीर वृद्धि को प्राप्त होता है। इस से आयु बढ़ती है, वशीकरण होता है, बल तथा सन्तान प्रात होते हैं। यह रस-मात्रा नामक योग पृथ्वी पर अत्यन्त विख्यात है ॥१२५-१३२॥

अथ त्रैलोक्यचिन्तामणिरसः—

रसं वज्रं हेम तारं [1]ताम्रतीक्ष्णाभ्रकामृतम् ।
गन्धकं मौक्तिकं शङ्खं प्रवालं तालकं शिला ॥१३३॥
शोधितं तु समं सर्वं सप्ताहं भावयेद् दृढम् ।
निर्गुण्डी-मूरणद्रावैर्वज्रदुग्धे दिनत्रयम् ॥१३४॥
अनेन पूरयेत्सम्यक्[2] पीतवर्णवराटिकाः ।
टङ्कणं रविदुग्धेन पिष्ट्वा तासां मुखं लिपेत् ॥१३५॥
रुद्ध्वा भाण्डपुटे पाच्याः साङ्गशैत्यं विचूर्णितम् ।
सर्वतुल्यं[3] च वैक्रान्तं पादांशं रसभस्मकम् ॥१३६॥
शिग्रुमूलद्रवैः सर्वं सप्तवारं विभावयेत् ।
चित्रमूलकषायेण भावनाश्चैकविंशतिः ॥१३७॥
आर्द्रकस्य[4] द्रवैः सप्त त्रितयं विजयाद्रवैः ।
जम्बीरैर्मातुलुङ्गैर्वा सप्तवारं विभावयेत् ॥१३८॥
सूक्ष्मचूर्णं ततः कृत्वा चूर्णपादांशटङ्कणम् ।
टंकणांशं वत्सनाभं तत्समं मरिचं क्षिपेत् ॥१३९॥
लवङ्गं नागरं पथ्या कणा जातीफलं पृथक् ।
प्रत्येकं वत्सनाभस्य पादांशं चूर्णितं क्षिपेत् ॥१४०॥

१—"ताम्रं तीक्ष्णाभ्रकामृतम्" पाठोऽयं सुष्ठु प्रतिभाति ।
२—ग्रन्थान्तरे तु—'पीतवर्णान् वराटकान्" इति पाठः ।
३—"चूर्णतुल्यं मृतं सूतं वैक्रान्तं सूतपादिकम् इति योगरत्नाकरीयः पाठः ।
४—"आर्द्रकस्य रसेनैव भावना सप्त एव च" इति योगरत्नाकरीयः पाठः ।

मातुलुङ्गार्द्रकद्रावैः सर्वमेतद्विलोडयेत् ।
चतुर्गुञ्जमिदं खादेत्कणाक्षौद्रं [1]लिहेदथ ॥१४१॥
क्षौद्रैर्वा चार्द्रकद्रावैः [2]शुण्ठीक्काथगुडान्वितम् ।
अनुपानमिदं खादेत्सर्वरोगप्रशान्तये ॥१४२॥
वह्निं दीपयते बलं च कुरुते तेजो महद्वर्धते
वीर्यं वर्धयते विषं च हरते दार्ढ्यं विधत्ते तनोः ।
अभ्यासेन निहन्ति मृत्युपलितं पुष्टिं प्रदत्ते नृणां ।
कासं कृन्तयते क्षुतं क्षपयते श्वासं च [3]निष्क्रामते ॥१४३॥
वातं विद्रधिशूलपाण्डुग्रहणीरक्तातिसाराञ्जयेद्
गुल्मप्लीहजलोदराश्मरितृषाशोथान् हलीमोदरम् ।
लूताकृच्छ्रभगन्दरज्वरगणानर्शांसि [4]कुष्ठान्यहो
साध्यासाध्यरुजो निहन्ति च रसस्त्रैलोक्यचिन्तामणिः ॥१४४॥

शुद्ध पारद, वज्रभस्म, सुवर्णभस्म, रजतभस्म, ताम्रभस्म, तीक्ष्ण-
लोहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध विष, गन्धक, मोती, शङ्ख; प्रवाल भस्म,
हरिताल शुद्ध, मैनशिल शुद्ध, इन सब को समान भाग लेकर सात दिन
तक सँभालू तथा जमीकन्द के रस में खूब भावित करें, पश्चात् थूहर
के दूध में तीन दिन भावित करें, पश्चात् पीले रंग की कौड़ियां लेकर
उनमें इस कल्क को भली प्रकार भर देवें फिर सुहागे को आक के

१—'लिहेदथ' इत्यत्र 'लिहेदनु' पाठोऽयं प्रतिभाति ।
२—'शुष्ठ्या वाऽथ गुडान्वितम्' इत्यपि पाठः ।
३—'निष्क्रामयेत्' पाठोऽयं प्रतिभाति ।
४—योगरत्नाकरे तु "कुष्ठं जयेत्" इति पाठः ।

दूध में पीस कर उससे कौड़ियों का मुख बन्द कर देवें। पश्चात् सब को एक हाण्डी में भर कर बन्द कर देवें फिर गजपुट में पकावें, स्वाङ्ग-शीतल होने पर निकाल कर चूर्ण कर लेवें, पश्चात् इस सब चूर्ण की बराबर वैक्रान्तभस्म मिलावें तथा इससे चौथाई रससिन्दूर मिलावें, पश्चात् सबको एक साथ खरल में रखकर सहँजने के रस से सातवार भावित करें फिर चित्रक की जड़ के काथ से इक्कीस वार भावित करें फिर अदरख के रस से सातवार भावित करें तथा तीन वार भांग के रस से भावित करें फिर जम्बीरी नीबू तथा विजौरा नीबू के रस से सातवार भावित करें। पश्चात् सुखाकर अत्यन्त महीन चूर्ण कर लेवें। इस चूर्ण का चौथाई सुहागा मिलावें तथा सुहागे की बराबर ही शुद्ध वत्सनाभ तथा काली मिरच मिलावे। पश्चात् लौंग, सोंठ, हरड़, पीपल, जायफल इनको पृथक् पृथक् वत्सनाभ से चौथाई ग्रहण करें पश्चात् इनका भी चूर्ण कर पूर्वोक्त चूर्ण में मिला देवे फिर सबको विजौरा नीबू तथा अदरख के रस से भावित करे। इस रस को चार रत्ती की मात्रा में पीपल के चूर्ण तथा शहद के साथ सेवन करे, अथवा शहद के साथ अथवा अदरख के रस के साथ सेवन करावे अथवा सोंठ का काथ और गुड़ के साथ सेवन करावे इन अनुपानों के साथ सबरोगों की शान्ति के लिये सेवन करे। यह रस अग्नि को दीपन करने वाला है, बल को बढाने वाला है, तेज को भी बढाने वाला है, वीर्य को बढाता है। विष को हरण करने वाला है शरीर को अत्यन्त दृढ़ बनाने वाला है, इसके सेवन से मृत्यु तथा पलित रोग दूर होता है। शरीर अत्यन्त पुष्ट होता है। खांसी नष्ट होती है, क्षुधा बढ़ती है, श्वास नष्ट होता है। वात रोग, विद्रधि, शूल, पाण्डु रोग, ग्रहणी और रक्तातिसार ये दूर होते हैं। गुल्म, प्लीहा जलोदर, अश्मरी, तृषा, शोथ, हलीमक, उदर रोग, ये दूर होते हैं। लूता का विष, मूत्रकृच्छ्र, भगन्दर, अनेकों प्रकार का ज्वर, बवासीर,

साध्य तथा असाध्य कुष्ठ इन सबको यह त्रैलोक्यचिन्तामणि रस दूर करता है ॥ १३३-१४४ ॥

इति त्रैलोक्यचिन्तामणिरसः ।

इति हिन्दी-टीकोपेता रसकौमुदी समाप्ता
समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

[illegible]

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन आयुर्वेद ग्रन्थमाला
४७

रसकौमुदी

'विद्योतिनी' हिन्दीव्याख्योपेता

चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१